पथ की पुकार

रचयित्री
महासती श्री कमलाकुमारी
"कमलप्रभा"

पुस्तक	–	पथ की पुकार (मणीचन्द्र–गुणचन्द्र काव्य कथा)
रचयित्री	–	परम विदुषी, प्रखरचिन्तिका कमल प्रभाजी म. सा.
प्रकाशक	–	श्री श्वे.स्था.जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा – ३११०२१
सौजन्य	–	श्रीमती कंचनदेवी चौधरी (धर्मपत्नी–स्व. श्री भैरूसिंहजी चौधरी)
प्रथमावृति	–	महावीर जयन्ती सं. 2059
प्रतियाँ	–	१०००
मूल्य	–	२०/– रूपए लागत मात्र
मुद्रक	–	सूर्य ऑफसेट प्रिन्ट्स वस स्टेण्ड रोड, विजयनगर ✆ 30513

-: शुद्धि पत्र :-

कृपया पुस्तक की निम्नांकित त्रुटियों का संशोधन कर पठन करें :-

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
रुचि	रुचिकर	स्वकीय पृष्ठ २	२
में तत्सम	तत्सम	पुरोवाक् पृष्ठ ५	९
विनय आभा से	विनय से	२	१५वीं पंक्ति
सरित्	सरित	३	१६वीं पंक्ति
कयों	क्यों	१०	१४वीं पंक्ति
पूर्व	पूर्ण	२७	७वीं पंक्ति
स्वामी।	स्वामी!	३१	७वीं पंक्ति
और	उस	३९	दोहे की प्रथम पंक्ति
व्यक्ति	मानव	९४	दोहे की षष्ठ पंक्ति
मणीचन्द्र	मणिचन्द्र	१३१	दोहे की ११वीं पंक्ति
मणीचन्द्र	मणिचन्द्र	१३२	दोहे की प्रथम पंक्ति
त्लो	लो	१३५	कृति १५ की चतुर्थ पंक्ति
स्वामिन्॥	स्वामिन्!	१४१	चतुर्थ पंक्ति
चहुँ	चहूँ	१४५	पंचम पंक्ति
झुलकते	झलकते	१४७	१४वीं पंक्ति
यदि	अगर	१५९	अंतिम पंक्ति



समर्पण

शीश झुका, कर जोड़कर,
रख मन श्रद्धा भाव।
धन्य हुआ मस्तक मेरा,
छू कर जिनके पाँव॥

गुरुवर्या 'जयवन्त' को,
देख करे सब नाज।
भाव–सुमन अर्पित करूं,
इन चरणों में आज॥

विनय – सेवा सुपथ – गमन,
किया न पल प्रमाद।
यह कृति उसका ही यहाँ,
पावन पुण्य – प्रसाद॥

सेवा निज कर्त्तव्य है,
है यह पावन – पंथ।
'कमल प्रभा' इस पर चले,
जीवन हो 'जयवंत'॥

स्वकीय

पावस की पावन घड़ियों में प्रतिदिन प्रातः प्रवचन की पुण्य सलिला प्रवाहित करने की परम्परा रही है। प्रवचन का मुख्य ध्येय भौतिकता की चकाचौंध में पथ भ्रमित, आत्मज्ञान से अनभिज्ञ जन सामान्य को मानवोचित कर्त्तव्य का ज्ञान कराते हुए स्व का बोध जगाना है। खाओ पीओ मौज करो, परलोक किसने देखा है, अनागत के सुखों की लालसा में वर्तमान के हस्तगत सुखों से विमुख होने की मूढता क्यों की जाये, यह समय फिर नहीं आने का इत्यादि विचारों का पल्लवन -पुष्पन करने वाली चार्वाक की मान्यता को पाश्चात्य संस्कृति ने अपनी हवा देकर जनमानस को इतना किंकर्त्तव्य विमूढ कर दिया है कि वह अतीत और अनागत को विस्मृत कर चुका है। भौतिक सुखों की इस अदम्य कामना ने व्यक्ति को देश समाज एवं परिवार के प्रति कर्त्तव्य-निर्वाह से पराङ्मुख बना दिया है। उसकी बुद्धि विवेक शून्य बन चुकी है। स्व को विस्मृत करके बाह्य जीवन में सुख की तलाश करते हुए व्यक्ति ने विपत्तियों का विशाल पहाड़ खड़ा कर दिया है मनुष्य के समक्ष उसकी मंजिल खड़ी है, पथ उसे अनवरत पुकार रहा है, मगर वह भौतिकता के चक्रव्यूह से निकलने को तैयार नहीं है। झंझावात के वेग में आत्म शान्ति का सुरीला स्वर वह सुन नहीं पा रहा है।

वर्षावास का पावन प्रसंग मेरे समक्ष समुपस्थित था। चार माह की लम्बी अवधि तक मुझे धर्म सभा को नियमित रूप से सम्बोधित करना था। चिन्तन का चक्र चला, क्या विषय चयनित किया जाये जिससे व्यक्ति का विवेक जागृत हो, हिताहित का बोध, कर्त्तव्य का भान, साथ ही स्वयं की पहचान हो ताकि वह वसुधा पर रहते हुए स्वर्गिक सुखों का आनन्द ले सके तथा अनमोल मानव जीवन को सार्थक करता हुआ शाश्वत सुखों की मंजिल को प्राप्त कर सके। इस दृष्टि से मुझे उत्तराध्ययन सूत्र का वीसवाँ अध्ययन (अनाथ मुनि) एवं मणीचन्द्र गुणचन्द्र का कथानक उपयुक्त प्रतीत हुआ। अनाथ मुनि का प्रसंग सचमुच इतना झकझोर देने वाला कथानक है कि उसको पढकर या सुनकर एक विवेकशील मनुष्य की आँखों पर पड़ा भौतिकता का पर्दा हट जाता है, उसे सांसारिक सत्यता का भान हो जाता है।

मणीचन्द्र-गुणचन्द्र के कथानक में विनय और सेवा की महत्ता

व्यंजित है। यद्यपि कथानक का कलेवर लघु था तथापि वर्तमान युग की आवश्यकता के अनुरूप विषय होने से वह मुझे रूचि लगा। उस कथानक में एक पुकार थी जो मुझे सुनाई दी, उसमें लिखने एवं कहने को बहुत कुछ था। इस तथ्य से आप अनभिज्ञ नहीं है कि पश्चिमी सभ्यता ने भारतीय संस्कृति पर बहुत बड़ा कुठाराघात किया है। राष्ट्र के धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सौहार्द्र की जड़ों को इसने शिथिल कर दिया है। भौतिकता के रंग में रंगी आज की युवा पीढ़ी दिशाहीन होकर विनय, सेवा, सहयोग एवं साधना के सुपथ से भटक कर अंधे कुए की ओर जा रही है। वह भूल चुकी है कि सृष्टि पारस्परिक सहयोग एवं सेवा भाव के आधार पर टिकी है। जोश में होश भूलकर आगे बढ़ना समय के सीने पर घाव करने से अधिक कुछ नहीं है।

हमें स्मरण करना होगा अतीत के उन बीते हुए क्षणों को जब हम इस अवनि पर अवतरित हुए। जन्मोपरान्त जब खुली हवा में सांस ली तब हम बिल्कुल असहाय थे। खाना-पीना, उठना, बोलना, सोना सब कुछ पराश्रित था। माता-पिता एवं परिजनोंकी स्नेह संवलित सेवा का ही यह प्रतिफल है कि उनके द्वारा लालित - पालित होकर हम आज इस अवस्था को प्राप्त हुए। सेवा के बिना संसार नहीं चल सकता। भूकम्प, बाढ़ आदि में सैकड़ों लोग अपने प्राण हथेली पर रखकर लाखों लोगों की रक्षा करते हैं, यह उनका सेवाभाव ही है। रेडक्रास वाले युद्ध भूमि में पहुँचकर घायलों की शुश्रूषा करते हैं उन्हे नया जीवन देते हैं यह भी सेवा है। प्रकृति का कण-कण हमें सेवा का पाठ पढ़ा रहा है। बादल प्यासी धरा के लिए जल लाते हैं। हवा प्राण वायु को लाती है, सूर्य ऊष्मा देता है, वनस्पति जगत मनुष्य को भोजन एवं औषधियाँ प्रदान करता है। शासन चिकित्सालय, विद्यालय, सड़कें, पार्क बनाकर सेवा धर्म की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। अगर सेवा धर्म का चक्र थम जाये तो धरती का जीवन नारकीय होने में देर नहीं लगेगी।

आज दूसरों से सेवा की हमारी आकांक्षा है किन्तु हम यह नहीं देख पा रहें है कि हम कितने गहरे पानी में हैं। सब यह महसूस कर रहे हैं कि आज की नई पीढ़ी विनय और सेवा के सद्‌गुणों से विमुख होती जा रही है। समाज और राष्ट्र की सेवा का दंभ भरने वाले अपने परिवार से ही कटने की कोशिश कर रहें हैं। वृद्ध माता-पिता , सास-ससुर, रोगी आदि जो सेवा की अपेक्षा रखते हैं वे हमें बोझ लगने लगे हैं। अतः मैंने सोचा कि प्रवचन के माध्यम से

उन्हें कर्त्तव्य का बोध करवाया जाय ताकि घर-परिवार में शान्ति की मंदाकिनी सतत प्रवाहमान हो। सेवा की अपेक्षा रखने वालों की आँखों में अश्रु नहीं मुस्कान हो, कंठों में रुदन नहीं आशीर्वाद का स्वर हो, मन में कसक नहीं आनंद का अहसास हो, इन्हीं विचारों ने मुझे मणीचन्द्र - गुणचन्द्र के प्राचीन कथानक को युगानुरूप भाव, भाषा एवं शैली में लिखने को उत्प्रेरित किया। कथानक मेरे मानस में था। भावोर्मियाँ अन्तर-उदधि में उद्वेलित होने लगी, फलतः कलम गतिशील हो गई। प्रतिदिन लिखना व सुनाना चातुर्मास का कार्य हो गया और वर्षावास के अन्त तक पूरा काव्य बन गया। काव्य का महल तो खड़ा हो गया किन्तु उसकी आन्तरिक साज सज्जा अभी शेष थी जो बिजयनगर प्रवास में पूर्ण हुई।

गुरुवर्या श्री की सेवा शुश्रूषा के पश्चात् जो भी समय मिलता, उसमें प्रस्तुत काव्य को परिमार्जित करने का उपक्रम चलता रहा। अब यह कथानक नये रूप में कृति का कलेवर पाकर सुधी पाठकों के सामने है। इस काव्य कृति के पीछे जहाँ मेरे कवि-मन का श्रम है, वहीं मेरी आस्था के केन्द्र, नानक गच्छ के देदीप्यमान दिवाकर स्व. पूज्य प्रवंतक गुरुदेव श्री पन्नालालजी म. सा. की परम्परा में दीक्षित आचार्य प्रवर युवा मनीषी श्री सुदर्शनलाल जी म. सा. प्रभृति गुरु भगवन्तों तथा परम श्रद्धेया गुरुवर्या श्री जयवन्त कँवर जी म. सा. का शुभ आशीर्वाद एवं महासती श्री मानकँवर जी की प्रेरणा सदैव मेरे साथ रही है। इस स्थिति में जो कुछ अच्छा बन पड़ा वह सब इन ज्ञानी गुरुजनों के द्वारा प्रदत्त प्रसाद है। मेरी सहवर्तिनी महासती वृन्द ने सेवा भार से प्रायः मुझे मुक्त रखकर सृजन के लिए जो समय दिया उसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

सुधी पाठक इस कृति का स्वाध्याय करके अपने जीवन को विनय एवं सेवा में समर्पित करने का प्रयास करेंगे,

इसी आशा एवं विश्वास के साथ -

जय महावीर !

महावीर जयन्ति
सरेरी बाँध (भीलवाड़ा)
दिनांक 25 अप्रेल 2002

कमलाकुमारी
'कमल प्रभा'

पुरोवाक्

रजनी अपना आंचल समेटती है तो भोर की चिड़िया क्षितिज से उड़कर व्योम की दूरियाँ नापने लगती है। उसके साथ ही प्रारंभ होती है एक यात्रा जिसमें पड़ाव कितने ही हो सकते हैं, परन्तु मंजिल एक ही होती है।

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण अपनी यात्रा में रत है। सूर्य की किरणें अपनी यात्रा में ऊष्मा और उजाला बांटती है। पानी की बूंदें हरीतिमा और तृप्ति प्रदान करती हैं। आँख से निकली अश्रु की धारा करुणा एवं दया का संचार करती है। श्वासों की यात्रा जड़ता को मिटाकर जीवन का उद्घोष करती है। शब्दों की यात्रा सत्य का परिचय कराती है। महापुरुषों की यात्रा जीवन में जागृति के भाव जगा कर हमें सत् पुरुषार्थ की सीढ़ियों पर चढ़ाती है। साधना के कंटकाकीर्ण पथ पर बढते हुए सन्तों की यात्रा सत्य से साक्षात्कार कराकर समस्या का समाधान दिखाती है। यहाँ सब नदियाँ सागर की ओर ही दौड़ रही हैं। क्षुद्र से विराट बनने में ही जीवन की सार्थकता है। जिसे लक्ष्य का ज्ञान हो जाता है वह पीछे मुड़कर नहीं देखता। चरैवेति चरैवेति का उद्घोष उसके अन्तर्मन में सदैव गूँजता रहता है। सुपथ की पुकार जिसने सुनली वह फिर पीछे की ओर नहीं लौटता। सोये हुए को जगाया जा सकता है पर जो जागते हुए भी आँखें बन्द कर नींद का बहाना किये हुए है उसे जगाना थोड़ा मुश्किल होता है। सन्त तो प्यार भरी पुचकार से समाज को जगाकर पथ से आती पुकार को सुनाते हैं। उनकी यात्रा बाहर कम भीतर की ओर अधिक होती है। संयम और मर्यादा के किनारों में उनकी जीवन-सरिता सतत प्रवाह मान बनी रहती है। नदी जब अपना पथ भूल जाती है तो प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है। वह जीवन दायिनी न रह कर महाविनाशिनी हो जाती है। चलता हुआ पथिक अपना पथ भूल जाये तो वह किसी महामरुस्थल या दलदल में पहुँचकर जीवन का अन्त कर लेता है।

जीवन में दिक् भ्रमित की यात्रा निरुद्देश्य होती है। उसमें भटकाव और पतन होता है। उसे घर, परिवार, समाज एवं संसार में घृणा का पात्र बनकर जीवन जीना पड़ता है। उस समय यदि वह बाहर की यात्रा निरस्त कर

मन की उड़ान रोक कर अन्तर की ओर मुड़ जाता है तो उसे लक्ष्य दिखाई देने लगता है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति पहले सोच समझ कर पथ को चुने और फिर उस पथ की पुकार, जो उसे लक्ष्य की ओर लाने हेतु आमंत्रण दे रही है, एक साधक की भाँति सुने। यह सब तभी संभव है जब मानव मन में दृढ़ संकल्प एवं बड़ों का आशीर्वाद हो, अन्तरात्मा में परमात्मा का निनाद हो, आस्था की धुरी पर स्वयं से संवाद हो, सन्मार्ग पर बढ़ने में पलभर भी प्रमाद न हो, मन में क्रन्दन नहीं वंदन हो, अन्तर में आग नहीं चन्दन हो, भावों में भंजन नहीं मंथन हो।

अन्तर से आती आत्म पोषिका पुकार को सुनने वालों की पावन परम्परा में कीतलसर के कलहंस पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री पन्नालालजी म. सा. का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उन्हीं की परम्परा को पल्लवित पुष्पित करने में महासती श्री जयवंत कँवर जी म. सा. ने महान ज्ञानी गुरुवर्या की भूमिका का निर्वाह करते हुए अपनी शिष्या महासती कमलाकुमारी जी 'कमल प्रभा' में साधना एवं सर्जना की भावना जागृत की है। आप श्री का गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार है। यही कारण है कि आपकी पूर्व प्रकाशित कृतियाँ "आंगन उतरी भोर" एवं "धरती का ध्रुव तारा" सुधी पाठकों में समादृत हुई हैं। नये सृजन की उर्मियों ने ही नये लेखन को जन्म देकर "पथ की पुकार" कृति को प्रकट किया है। आपका लक्ष्य साधना के साथ सृजन भी रहा है। वर्तमान युग में अहर्निश जीवन मूल्यों का ह्रास, सेवाभाव में शिथिलता, संस्कृति एवं संस्कारों का पतन चिन्तन का विषय है। विघटन एवं विसंगतियों के दलदल में फँसा आज का समाज फैशन एवं व्यसन में डूब रहा है। महासती जी ने श्रमणी धर्म का निर्वाह करते हुए इस कृति के रूप में धर्म दर्शन, ज्ञान, साधना, सेवा, परोपकार एवं कल्याण का सप्तगुण सुरभित सुमन खिलाया है। प्राचीन लघु कथानक को प्रबन्ध काव्य के रूप में बूंद से सागर का विस्तार देकर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। गुलाब की टहनी पर भी कांटा होता हैं। चन्दन की लकड़ी पर भी दीमक चढकर उसे नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मणीचन्द्र जैसे धर्मनिष्ठ श्रावक के घर गुणचन्द्र जैसा पुत्र बड़ा होकर कुसंग से व्यसन ग्रस्त बन कर श्रेष्ठी से भिखारी बन जाता है। वेश्या से अपमानित होकर पत्नी सहित ऐसे पथ पर आ जाता है जहाँ उसका कोई नहीं है। अपने माता-

पिता को अपमानित, प्रताड़ित एवं निष्कासित करने का फल उसे अन्ततः मिल ही जाता है। वह पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ पिता के समीप पहुँचकर क्षमा मांगते हुए उनकी सेवा में लग कर पुनः श्रेष्ठी पद प्राप्त कर लेता है। अन्त में गुरु के उपदेश से जागृत होकर वह पत्नी के साथ संयम का पथ स्वीकार कर जीवन का कल्याण करता है।

इस संक्षिप्त कथानक को महासती जी ने प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा में सुन्दर प्रबन्ध काव्य का रूप दिया है। पूरा प्रबन्ध ग्यारह पटल में विभाजित है। प्रत्येक पटल के शीर्षक में ही कवयित्री की काव्य प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रबन्ध काव्य के शोध का बोध होने के कारण प्रबन्ध के सभी तत्वों का समावेश इस काव्य में हुआ है। महासती जी का उद्देश्य काव्य रचना के साथ साथ जैन धर्म एवं दर्शन की महिमा को प्रदर्शित करना भी रहा है जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। युग धर्म का निर्वाह इस कृति में पूरी तरह बन पड़ा है। पर्यावरण सुधार, व्यसन मुक्त समाज, नारी की महत्ता आदि को आप श्री ने नया कलेवर प्रदान किया है। मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य आत्मा का कल्याण करना है। यह कल्याण कैसे हो इस हेतु "पथ की पुकार" को सुनकर पाँवों को गति देनी होगी। शान्त रस से ओत प्रोत यह प्रबन्ध काव्य अन्य रसों के सहयोग से पटल दर पटल आगे बढ़ा है।

मंगलाचरण की रूढ़ी का निर्वाह करते हुए आपने काव्य के प्रारम्भ में पंच परमेष्ठी को वंदन किया है तथा मंगल कामना की है कि उनके आशीर्वाद से यह काव्य अबाध गति से लक्ष्य तक पहुँच सके। नगर वर्णन में कनकपुरी के लिए लिखा है -

इसी भरत में कनकपुरी है नगरी।
ले छटा स्वर्ग की मानो भू पर उतरी॥

नगर वर्णन के साथ ही राजभवन, अन्तःपुर, उद्यान, सरोवर, वन-प्रांतर समवसरण आदि का सरस वर्णन किया है। पर्यावरण की सुरक्षा वर्तमान युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। कनकपुरी के नागरिक पर्यावरण की सुरक्षा सदैव ही अपना कर्त्तव्य समझ कर करते हैं -

पर्यावरण की थी वहाँ रक्षा पूरी।
कर्त्तव्य समझते लोग नहीं मजबूरी॥

जैन धर्म के सिद्धान्तों को कृति में पूरा स्थान मिला है। जहाँ जहाँ भी सन्तों के उपदेश हुए वहाँ धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में कवयित्री जी पीछे नहीं रही। पाँच महाव्रत के लिए कहा है -

अणुव्रत महाव्रत भेद कहे दो व्रत के,
गृह त्यागी होते पथिक महाव्रत पथ के।
पूर्ण अहिंसास्तेय, सत्य का पालन,
त्याग परिग्रह, ब्रह्मचर्य यावज्जीवन॥
ये पाँच महाव्रत भव का भ्रमण मिटाये।

वर्तमान शिक्षा पद्धति ने गुरु शिष्य परम्परा पर गहरा आघात किया है। ट्यूशन पर आपने लिखा -

धन लालच में रोग ट्यूशन का पाला।
सरकार देती भरपूर न फिर भी ताला॥

दुर्व्यसन मनुष्य के जीवन को नारकीय बना देते हैं। जब एक दुर्व्यसन ही जीवन बाग में आग लगा देता है तो जहाँ सातों दुर्व्यसन हों उस जीवन की बर्बादी का क्या कहना -

आमिष, मदिरा, पर नारी, वेश्या प्रीति।
है द्यूत, चोरी, शिकार करे फजीती॥
बर्बाद जिन्दगी एक यदि लग जाये।

विनय और सेवा सुखों की प्राप्ति का पंथ है, जो इनसे हट कर चला वही दुःखों के सागर में डूबा है -

विनय-सेवा जो सुख का पंथ निराला।
दुःख पाता उससे हटकर चलने वाला॥

प्रस्तुत काव्य में अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों

की अद्भुत छटा के साथ कहावतों एवं मुहावरों की रंगत देखने योग्य है। जैसे - फूंक-फूंक कर पग धरना, अच्छी घूंटी पिलाना, कोरा कागज, धोबी का कुत्ता घर का न घाट का, नानी याद आना, फूला न समाना, भागते चोर की लंगोटी हाथ आना आदि। विदुषी महासती जी ने जहाँ गढ़ चित्तौड़ की तर्ज पर कथा क्रम को आगे बढ़ाया वहीं प्रत्येक पटल का प्रारम्भ दोहों से किया है। एक दो स्थानों पर सवैयों की मनोहर छटा भी दिखाई देती है। यह काव्य जन साधारण की रुचि का बन सके इस हेतु लोक प्रचलित उर्दू, अरबी, फारसी अंग्रेजी आदि के शब्द भी इसमें सहजता से आ गये हैं जैसे - मजबूर, ईमान, दिल, याद, खबर, फ़जीती, मंजिल, ट्यूशन आदि। में तत्सम शब्दों की बहुलता एवं जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों के होते हुए भी पूरा काव्य सरसता से सम्पन्न है। इस काव्य में सेवा एवं विनय की महिमा पर बल दिया गया है। सन्तों के उपदेश, गुरुजनों एवं माता पिता के आशीर्वाद में इसको स्पष्ट देखा जा सकता है।

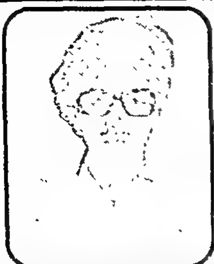
'पथ की पुकार' काव्य कृति धर्म प्रेमियों के साथ - साथ काव्य रसज्ञ पाठकों मे भी समादृत होगी। काव्य की चित्रात्मक शैली को सुन या पढ़कर प्रत्येक आस्तिक का मन विनय और सेवा की भावना से दृढ़ होगा ऐसा मुझे विश्वास है, अन्त में मैं यही कहूँगा कि -

श्री कमलप्रभाजी की कृति यह पथ की पुकार,
पाठक के मन में भरे सद्गुण-सत्य विचार।
कुसंगत और व्यसन तज मन के मिटा विकार,
'शशिकर' सेवाभाव ही है जीवन श्रृंगार॥

12 मार्च, 2002
शिवरात्रि पर्व
बिजयनगर (अजमेर)

डॉ. शशिकर "खटका राजस्थानी"
एम. ए., पी. एच. डी.
(हिन्दी जैन प्रबन्ध काव्य)

अनुक्रमणिका



स्व. श्री भैरूसिंहजी चौधरी

अर्थ सहयोगी एक परिचय



श्रीमती कंचनदेवी चौधरी

सागर का जल भले ही खारा हो मगर वह जब वाष्प का रूप लेकर अवनी पर वरसता है तो सवके लिए आदेय वन जाता है। इसी तरह धन जव तक तिजोरी में कैद रहता है उसकी कोई उपयोगिता नहीं होती पर जव उसका उपयोग परिवार के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में होता है तो वह जीवन की सार्थकता में निमित्त वनता हुआ धनाभाव के कारण मुरझाये हुए परिवारों के भी मुस्कान वांटता है। वस्तुतः उसी का जीवन जीवन है, जो दान, शील, तप ओर भाव की आराधना में रस लेता है। स्व. श्री भैरूसिंहजी सा. चौधरी ऐसे ही सद्गृहस्थ थे। आप अजमेर जिले के भिनाय ग्राम निवासी स्व. श्री हगामीलालजी सा. चौधरी के सुपुत्र हैं। आपका विवाह गुलावपुरा निवासी श्री मिश्रीलालजी वुरड़ की सुपुत्री कंचनदेवी के साथ हुआ था जो एक धर्मनिष्ठा सुश्राविका है। आपने स्वाध्याय संघ गुलावपुरा से संचालित महिला मण्डल की सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण की हैं।

स्व. श्री भैरूसिंहजी के चार पुत्र है- श्री सज्जनसिंहजी, श्री चन्द्रसिंहजी श्री बलवंतसिंहजी एवं श्री राजेन्द्रसिंहजी जिनका क्रमशः चन्द्रकान्ता, शीला एवं चन्द्रलेखा से विवाह संपन्न हुआ। आपके तीन सुपुत्रियाँ हैं – शशि, मधु एवं इन्दुजी जिनका पाणिग्रहण रोशनलालजी दुग्गड़ भीलवाड़ा, श्री माणकचन्दजी कांठेड वैंगलोर एवं श्री अशोकचन्दजी वावेल व्यावर के साथ हुआ।

आपका पूरा परिवार श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तक गुरूदेव श्री पन्नालालजी म.सा. का भक्त रहा है। गुरुवर्या श्री जयवन्त कंवरजी म.सा. के प्रति आपकी प्रवल आस्था है। गुरु के आशीर्वाद एवं धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा के कारण लक्ष्मी की आप पर सदैव कृपा रही है। सद् साहित्य के प्रकाशन में रुचि होने के कारण ही प्रस्तुत कृति 'पथ की पुकार' में अर्थ सहयोगी वनकर आपने अपनी दान प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस हेतु प्रकाशन संस्था आपके प्रति साधुवाद प्रकट करती है। धर्म साहित्य के प्रचार-प्रसार में आप सदैव इसी प्रकार अग्रणी रहे यही हमारी भावना है।

✍ प्रकाशक

॥ जय गुरु पन्ना ॥ ॥ जय गुरु सोहन ॥ ॥ जय गुरु सुदर्शन ॥

स्वाध्याय संघ के आद्य प्रणेता

पूज्य प्रवर्त्तक गुरूदेव श्री पन्नालाल जी म.सा. की 116 वीं

जन्म जयन्ति के उपलक्ष में स्वाध्यायार्थ उपहार

[illegible], [illegible] © 230827

मंगलाचरण

प्रथम नमन अर्हन्त को, जिनका बहु उपकार।
ज्ञान प्रभा फैली यहाँ, जाग उठा संसार॥

सिद्ध लोक में जो गये, वन्दन उन्हें अनन्त।
कर्म नष्ट कर मुक्त बन, पाया भव से अन्त॥

धारक गुण छत्तीस के, शासन पति आचार्य।
'कमल प्रभा' वंदन उन्हें, मूर्ति महा औदार्य॥

उपाध्याय बन ज्ञान दे, हरे तिमिर अज्ञान।
प्रणमन पावन चरण में, करे जगत उत्थान॥

सकल साधु जो लोक में, रखे सदा सुविचार।
तिर कर तारे और को, प्रणमूं बारम्बार॥

हँस वाहिनी शारदे !, धरूं आपका ध्यान।
मेरी वाणी को मिले, माँ ! तेरी पहचान॥

जिस पर माँ ! तेरी कृपा, अज्ञ विज्ञ बन जाय।
मूढ़ लेखनी ले यहाँ, कालिदास कहलाय॥

अभिमानी अप्रिय लगे, विनयी मन हर लेत।
मानी नर तो जगत में, है अवगुण का खेत॥

मणीचन्द्र-गुणचन्द्र की, कथा कहूँ सुखकार।
सुख मय जीवन चाहिए, विनय भाव लो धार॥

।। जय गुरु पन्ना ।। ।। जय गुरु सोहन ।। ।। जय गुरु सुदर्शन ।।

स्वाध्याय संघ के आद्य प्रणेता

पूज्य प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री पन्नालाल जी म.सा. की 116 वीं

जन्म जयन्ति के उपलक्ष में स्वाध्यायार्थ उपहार

मंगलाचरण

प्रथम नमन अर्हन्त को, जिनका बहु उपकार।
ज्ञान प्रभा फैली यहाँ, जाग उठा संसार॥

सिद्ध लोक में जो गये, वन्दन उन्हें अनन्त।
कर्म नष्ट कर मुक्त बन, पाया भव से अन्त॥

धारक गुण छत्तीस के, शासन पति आचार्य।
'कमल प्रभा' वंदन उन्हें, मूर्ति महा औदार्य॥

उपाध्याय बन ज्ञान दे, हरे तिमिर अज्ञान।
प्रणमन पावन चरण में, करे जगत उत्थान॥

सकल साधु जो लोक में, रखे सदा सुविचार।
तिर कर तारे और को, प्रणमूं बारम्बार॥

हँस वाहिनी शारदे !, धरूं आपका ध्यान।
मेरी वाणी को मिले, माँ ! तेरी पहचान॥

जिस पर माँ ! तेरी कृपा, अज्ञ विज्ञ बन जाय।
मूढ़ लेखनी ले यहाँ, कालिदास कहलाय॥

अभिमानी अप्रिय लगे, विनयी मन हर लेत।
मानी नर तो जगत में, है अवगुण का खेत॥

मणीचन्द्र-गुणचन्द्र की, कथा कहूँ सुखकार।
सुख मय जीवन चाहिए, विनय भाव लो धार॥

पथ की पुकार

प्रथम – पटल

प्रत्यूष

तर्ज – गढ़ चित्तौड़

सुख मिले उसे जो विनय, सेवा अपनाये।
यह मणीचन्द्र-गुणचन्द्र कथा बतलाये॥ टेर॥

सकल सुखों का द्वार विनय से खुलता
मन का मुरझाया सुमन विनय से खिलता।
सर्वत्र सभी का प्रिय वह नर बनता है
जो निज को अहँ से सदा दूर रखता है॥
विनय आभूषण, जीवन अपना सजाये॥ १॥

धवल चन्द्रिका जैसे शशि छिटकाता
विनयी वैसे ही अपनी कीर्ति फैलाता।
आशीष बड़ों का विनयवान ही पाता
सुप्त चेतना को भी वही जगाता॥
आलोक विनय है, अपना तमस भगाये॥ २॥

अहं रखे वह धर्म भला क्या पाले
वह क्या दौड़े जिसके पाँवों में छाले।
गुणस्थान चढ़ता है विनय आभा से प्राणी
आभ्यन्तर तप यह कहे शास्त्र की वाणी॥
विनय नीर है, आत्म मैल धुल जाये॥ ३॥

काँटा पाँव का अहं न चलने देता
है भँवर यह नौका कोई कैसे खेता।
अल्प अहं हो तो भी ज्ञान रुक जाता
यह बाहुबली वृत्तांत हमें दरसाता।।
अतः अहं तज जीवन सफल बनाये।। ४।।

सूखी डाल सम सदा तना जो रहता
बात-बात में क्रोध-अनल में दहता।
दुख पाता है दुनिया में नर अभिमानी
बने शूल जग में उसकी जिंदगानी।।
कथा यही आओ रसभरी सुनाये।। ५।।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र अति प्यारा
है पावन भू यह जहाँ धर्म उजियारा।
नभ में द्वितीया का चन्द्र सुहाये जैसे
यह भरत क्षेत्र भी भू-मण्डल पर वैसे।।
सुर क्या सुरपति तक का भी मन ललचाये।। ६।।

अमृत सम शीतल सलिल सरित् बहाये
झरते झरनें कलकल का गीत सुनाये।
हरित भरित वन-उपवन शोभा छिटके
नग, नद-तट, तरु, सर पर आँखें अटके।।
यों भरत क्षेत्र की शोभा नयन लुभाये।। ७।।

इसी भरत में कनकपुरी है नगरी
ले छटा स्वर्ग की मानों भू पर उतरी।
नगरी बाहर भव्य, निराले बगीचे
जहाँ विटप फलों से लदे देखते नीचे।।
कदली-पत्र भी खड़े हैं बाँह फैलाये।। ८।।

आम्रतरु कहीं पंक्ति बद्ध खड़े हैं
जामून, फालसे प्रहरी बने अड़े हैं।
वृक्षों पर कोकिल, मोर, पपीहा बोले
शुक, मैना झूले उन पर होले-होले॥
नृत्य मोर का मन को बहुत लुभाये॥ ९।

भरा सरोवर निर्मल मीठे जल से
जो मनहर लगता खिले हुये शतदल से।
षट्पद गुंजन कानों को लगती प्यारी
अरु फव्वारों की शोभा सबसे न्यारी॥
शब्दों में वर्णन किया नहीं सब जाये॥ १०॥

खेत वहाँ के अन्न बहुत उपजाते
कृषकों के चेहरे रहे सदा मुस्काते।
कूप, वापिका, सर न कभी हो खाली
फल से पेड़ों की लदी रहे हर डाली॥
आम्रमंजरी शोभा बहुत बढ़ाये॥ ११॥

ग्रीष्म ऋतु में नीर नहीं घट पाता
सर, सरिताओं में सदा वह मुस्काता।
पर्यावरण की थी वहाँ रक्षा पूरी
कर्त्तव्य समझाते लोग नहीं मजबूरी॥
नियम ऐसे ही नृप ने वहाँ बनाये॥ १२॥

हरे वृक्ष को नहीं कभी कोई काटे
काटे उनको ही जिन पर होते कांटे।
पथिक क्षुधा से पीड़ित जो भी आते
फल खाकर जी भर, अपनी भूख मिटाते॥
पर नहीं हानि वृक्षों को वे पहुँचाये॥ १३॥

नगर मध्य महीपति का महल बना है
बिन आज्ञा अन्दर जाना वहाँ मना है।
राजमहल के कलश दूर से दमके
सुनते ही नृप का नाम अरिदल चमके॥
वह सभी राज्यों से मैत्री भाव बढ़ाये॥ १४॥

बड़े-बड़े बाजार हैं हलचल भारी
व्यापारी प्रायः न्याय-नीति के धारी।
ग्राहक क्रय करके कभी नहीं पछताते
ले इष्ट सामग्री खुशी-खुशी घर जाते।
ठगे जाने का भय ना उन्हें सताये॥ १५॥

तोल-मोल में अन्तर कोई न करता
जन, धर्म और कानून दोनों से डरता।
लाभ चाहे पर लोभ नहीं वे करते
कानून कड़े थे फूंक-फूंक डग धरते।
नृप के सैनिक भी रहते नयन गड़ाये॥ १६॥

कनककेतु भूपति था प्रजानुरंजक
दीन, दुखी, अनाथों का दुख-भंजक।
निर्धन-धनिक में भेद नहीं वह रखता
ईमान, धर्म का परम स्वाद वह चखता॥
अपराध राज्य में ठहर नहीं थे पाये॥ १७॥

पिता तुल्य दिल प्रजा प्रति था नृप का
जनता भी सुत सम मान करे नित उनका।
तन भूषण भूषित हरदम नृप का रहता
मन में करुणा का निर्झर निशदिन बहता॥
बन प्रजा हितैषी वह तो समय बिताये॥ १८॥

शत्रु भले दलबल से सज धज आए
सीमा पर ही मुँह की सदा वह खाए।
प्रजा रक्षण हित नृपति रखता सेना
अतिक्रमण कर उसको क्या था लेना॥
विस्तार सीमा का नहीं भूप मन आये॥ १९॥

अन्य राज्यों को अपना मित्र बनाया
समय-समय सहयोग भाव दरसाया।
यों कनककेतु की कीर्ति चहुँदिशि छाई
ऐसे नृप को पा जनता भी हरसाई॥
सदा गुप्तचर खबर राज्य की लाये॥ २०॥

धन वैभव के भण्डार भरे हैं भारी
कर्त्तव्य परायण हैं सारे अधिकारी।
बढ़ा चढ़ा व्यापार गुणी व्यापारी
धर्म युक्त व्यवहार रखे सुखकारी॥
चिड़ी चोंच सम नृप कर वहाँ लगाये॥ २१॥

था अन्तः पुर भी नृप का बड़ा निराला
खुशियों का उजाला, गम का कहीं न काला।
शत तीन रानियाँ, एक-एक से बढ़ कर
राजा के इंगित पर थीं सब वे हाजिर॥
पर मृगवेगा उन सब में अधिक सुहाये॥ २२॥

भगिनी भाँति ही रहे सभी वे रानी
ना कभी भूलकर होती खेंचातानी।
दास-दासियों से वे परिवृत रहती
कटुक वचन नहीं कोई किसी को कहती॥
अनुचर भी सारे रहते शीश झुकाये॥ २३॥

वह मृगवेगा पटरानी थी सुख दाता
नहीं करे काम कोई जिससे हो असाता।
दिव्य रूप संग गुण का भी संगम है
ये दोनों एक में हों, यह भी क्या कम हैं !
क्षमा भाव मन में वह रहती बसाये॥ २४॥

संतति सुख भी भूपति ने था पाया
सुत साठ एक सौ का वह तात कहाया।
पढ़े-लिखे सब आज्ञाकारी सुत थे
विनय, सरलता, सेवा से सब युत थे॥
राज्य काज में नृप का हाथ बटाये॥ २५॥

पूर्व पुण्य वह भूप साथ था लाया
इसी लिये जीवन में सुख की छाया।
जो नियम राज्य के प्रेम से सब नर पाले
कोई भी महीपति की आज्ञा नहीं टाले॥
शुभ भावना भूपति के प्रति सब जन भाये॥ २६॥

मणीचन्द्र एक सेठ नगर में नामी
अचलापति सम वह धन वैभव का स्वामी।
व्यापार हेतु वह जिसके हाथ लगाता
मिट्टी भी छूता तो सोना बन जाता॥
अन्य श्रेष्ठी भी सलाह पूछने आये॥ २७॥

बढ़ी पूंजी व्यापार बहुत फैलाया
बस सूत्र सफलता का ही उसने पाया।
सभी मुनीमों पर विश्वास जताता
हो भूल प्रेम से पास बुला समझाता॥
वेतन के संग वे भाग लाभ का पाये॥ २८॥

दान देते क्षण हाथ न पीछे फिरता
खुश होकर सेवा दीन दुखी की करता।
कोई भी नर आकर दुख अपना गाता
सहयोग श्रेष्ठी से पूरा ही वह पाता॥
जन हित में धन को लगा हृदय हरसाये॥ २९॥

है श्रेष्ठी भार्या शीलवती गुणधारी
सुभद्रा उसका नाम अति सुखकारी।
सुन्दरता की बनी वह पूरी गगरी
उस दिव्य रूप पर मोहित सारी नगरी॥
साँचे में ढलकर मानो रूप निखराये॥ ३०॥

प्रिय पत्नी की भी बात श्रेष्ठी नहीं टाले
सद्गृहिणी सम वह सबको ही संभाले।
सुकृत हेतु धन श्रेष्ठी उसको देता
देकर के लेखा कभी न उससे लेता॥
धन मिला भाग्य से क्यों नहीं लाभ उठायें॥ ३१॥

जब कोई अतिथि उसके घर में आता
वह देव तुल्य सम्मान वहाँ पर पाता।
मृदुभाषिणी बनकर शब्द सदा उच्चारे
मित भाषण कर वह जीवन नित्य निखारे॥
सुपत्नी को पा मणीचन्द्र हरसाये॥ ३२॥

जिनवाणी के प्रति अटूट श्रद्धा उर में
अरिहंत, सिद्ध प्रभु बसे हुये मन-पुर में।
दान देने में नहीं स्वामी से पीछे
ला दया भावना पुण्य-विटप वह सींचे।
दान, शील, तप, भावना उत्तम भाये॥ ३३॥

व्यवहार मृदुल मंन उसने सबका जीता
घर-आँगन आकर गया न कोई रीता।
दास-दासी के पुत्र-पुत्री जब आते
ममता पा वे भी मन में खुश हो जाते॥
भर-भर के अंजलि मेवा वे तो पाये॥ ३४॥

जैन धर्म को पाले दास व दासी
उनको भी मालूम है आत्मा अविनाशी।
शुभ कर्मों का फल जग में शुभ ही होता
जो करे पाप निश्चय ही वह तो रोता॥
कर्मों का वार नहीं खाली कदापि जाये॥ ३५॥

मणीचन्द्र की महिमा चहुँदिश फैली
लक्ष्मी भी करती उसके घर अठखेली।
खाली हाथ नहीं कोई लौटा घर से
दास-दासी भी दान करे खुद कर से॥
वह नगरी में सम्मान सभी से पाये॥ ३६॥

राजभवन तक यश-सुरभि अब पहुँची
आह ! कैसी भावना है श्रेष्ठी की ऊँची।
सत्कर्मों की ही पूजा जग में जानो
मत धन-वैभव पर इठलाओ धनवानो!
श्रेष्ठी पद कैसे पाया यह दरसाये॥ ३७॥

महामंत्री को नृप ने पास बुलाया
अरु अन्तर्मन का भाव उसे बतलाया।
कल मणीचन्द्र को राज सभा में लाओ
है किया भूप ने याद उन्हें बतलाओ॥
रथ लेने उनको राजभवन से जाये॥ ३८॥

त्वरित मन्त्री ने अपना शीश नवाया
चढ़ चला अश्व पर मणीचन्द्र घर आया।
किया भूप ने याद श्रेष्ठी से बोला
क्या कारण इसका भेद नहीं था खोला॥
कल राजसभा में आप कृपा कर आयें॥ ३९॥

मणीचन्द्र मन ही मन यह विचारे
कल जाना होगा राजभवन के द्वारे।
जाने अनजाने भूल हुई क्या ऐसी ?
जो राजभवन में होगी मेरी पेशी॥
आ पत्नी पास वह अपनी बात बताये॥ ४०॥

सुन कहे सुभद्रा भय ना मन में लाये
ले नाम प्रभु का खुशी-खुशी वहाँ जाये।
हम नहीं भूलकर बुरा किसी का करते
फिर स्वामी ! आप कयों ऐसे मन में डरते।
भय क्या सच को नाथ ! नहीं घबरायें॥ ४१॥

प्रतिदिन की भाँति आई संध्या रानी
कर भोजन उसने पिया पेट भर पानी।
सूर्यास्त बाद नहीं दोनों कुछ भी खाते
ले सामयिक वे गीत प्रभु का गाते॥
धर्मानुरागी बन जीवन अपना बिताये॥ ४२॥

भोर होने से पहले ही वे जगते
नवकार मंत्र जप अपनी शय्या तजते।
कर सामायिक वे बैठ ध्यान हैं धरते
दास-दासी भी उठकर दूर विचरते॥
कहीं ध्यान में खलल नहीं पड़ जाये॥ ४३॥

फिर दैनिक कृत्यों से निवृत्ति पाई
धुले वस्त्र सुभद्रा लेकर आई।
दासी ने आकर अपना शीश झुकाया
है अल्पाहार तैयार यह बतलाया॥
मणीचन्द्र, सुभद्रा संग उठ जाये॥ ४४॥

दोनों ने मिलकर प्रातराश कुछ पाया
खा पीकर श्रेष्ठी बहिर्कक्ष में आया।
हिनहिना उठे घर बाहर आकर घोड़े
खड़ा मंत्री वहाँ अपने कर दोउ जोड़े॥
सादर रथ में सचिव उन्हें बैठाये॥ ४५॥

रथ ले उनको राजभवन में आया
उठ भूपति ने आसन पर उन्हें बिठाया।
फिर श्रेष्ठी गले में नृप ने माला डाली
यहाँ नगर सेठ का पद वर्षों से खाली।
इस योग्य हमें तो आप नजर हैं आये॥ ४६॥

मणीचन्द्र कहे मुझसे कई बड़े हैं
जिनके घर आंगन हीरे रत्न जड़े हैं।
मैं साधारण क्या उनकी होड़ कर पाऊँ
दो अगर आज्ञा तो नाम अभी मैं गिनाऊँ॥
नृप कहे नाम नहीं स्वीकृति आप दिलाये॥ ४७॥

अति आग्रह लख वह श्रेष्ठी पद स्वीकारे
खुद कनक केतु नृप गुण उनके उच्चारे।
दया, दान, करुणा के हैं ये धारी
इस नगरी में नहीं इन सम पर उपकारी॥
है महिमा पुंज ये क्या - क्या गुण दरसाये॥ ४८॥

कर राजकोष में जितना जमा कराया
उतना तो कोई अन्य सेठ नहीं लाया।
राजसभा ने उठ सम्मान किया है
नृप ने यह निर्णय उत्तम आज लिया है॥
नगर श्रेष्ठी आसन पर उन्हें बिठाये॥ ४९

उद्घोष नगर में महीपति ने करवाया
सुन के सूचना नगर सारा हरसाया।
ईर्ष्यालुजन के मन पर लोटे अजगर
करते बातें वे मन ही मन खिसियाकर॥
क्या हम में नृप को नजर कोई नहीं आये॥ ५०॥

तभी सेवक इक राज सभा में आया
आकर के उसने नृप को शीश झुकाया।
कहो भाई क्या खबर नई तुम लाये
मन मुदित तुम्हारा चेहरा यही दिखाये।।
हाथ जोड़ तब सेवक बात बताये॥ ५१॥

धर्मघोष गणि शिष्यों सहित पधारे
वनमाली स्वामिन् ! बात यह उच्चारे।
खुशखबर यह तो अच्छी तुमने सुनाई
रोम-रोम मेरा तो गया हुलसाई॥
कर दर्शन गुरु के जीवन सफल बनाये॥ ५२।।

उपहार दिया वनमाली को हरसाकर
माली भी हर्षित हुआ है उसको पाकर।
भूप कहे मंत्री जी करो तैयारी
कहो रथिक से लाये तुरत सवारी॥
महारानी को भी जा संदेश सुनाये॥ ५३॥

मणीचन्द्र कहे मैं भी आज्ञा पाऊं
अपने घर जाकर बात यह बतलाऊं।
सौभाग्य हमारा गुरुवर आज पधारे
वे तिरण तारण की जहाज भविजन तारे॥
इतना कह श्रेष्ठी आसन से उठ जाये॥ ५४॥

मणीचन्द्र अब राजभवन से निकला
इतिहास और भी हो गया उसका उजला।
इष्ट मित्रों ने दी भरपूर बधाई
सुन श्रेष्ठी बोला स्नेह आपका भाई॥
मैं योग्य नहीं पर महीपति मान न पाये॥ ५५॥

समाचार सुभद्रा पास भी आया
पद नगर सेठ का स्वामी ने है पाया।
दासी से उसने कंचन थाल मंगाया
खुश होकर उसने उसको तुरत सजाया॥
देखे द्वार को रह-रह नजर उठाये॥ ५६॥

थाली में कुंकुम, केशर, अक्षत, रोली
स्वस्तिक का चिह्न बनाने कुंकुम घोली।
रथ रुका द्वार पर उतरे सेठ जी नीचे
मंत्री आदि भी उनके पीछे-पीछे॥
आके सामने तिलक सुभद्रा लगाये॥ ५७॥

सचिव आदि जो साथ सेठ के आये
सम्मान सहित आसन पर उन्हें बिठाये।
मुँह मीठा सेठ ने सबका फिर करवाया
अरु दासों ने आ शीतल नीर पिलाया॥
हर्षित मन सब विदा वहाँ से पाये॥ ५८॥

कहे श्रेष्ठी खुश खबर सुनाऊँ प्यारी
है चलना बाग में शीघ्र करो तैयारी।
गुरुदेव हमारे संघ सहित पधारे
है पुण्य योग जो जागे भाग्य हमारे॥
गुरुवाणी सुनकर अन्तस् तमस भगाये॥ ५९॥

त्वरित श्रेष्ठी ने रथ तैयार कराया
सब काम छोड़ दर्शन का भाव जगाया।
काम का क्या दिनभर करते ही जाए
फिर भी इसका अन्त कभी नहीं आए॥
संकेत होते ही रथ को रथिक दौड़ाये॥ ६०॥

उद्यान बहि आ सेठ ने रथ रुकवाया
गुरुराज पधारे मन में हर्ष सवाया।
सेठ सेठानी दोनों रथ से उतरे
गुरु दर्श खुशी से खिले खिले थे चेहरे॥
जिन धर्म उपासक और कई वहाँ आये॥ ६१॥

उतर श्रेष्ठी अब आगे-आगे चलता
मुख पल पल उसका कंज पुष्प सा खिलता।
सुभद्रा उसके पीछे-पीछे चलती
है रूप मनोहर जैसे वर्तिका जलती॥
करबद्ध दोनों ही आये नयन झुकाये॥ ६२॥

कर सविधि वंदन शीश विनय से झुकाया
है अहो भाग्य जो गुरु दर्शन है पाया।
जहाँ बैठी नारियां उधर सुभद्रा जाये
पुरुषों के मध्य वह श्रेष्ठी स्थान बनाये॥
इतने में भूपति रानी के संग आये॥ ६३॥

पहुँच गये पहले ही कई नरनारी
क्यों नहीं जायेंगे आये गुरु उपकारी।
सब आतुरता से गुरु मुख देख रहे हैं
कब बरसे यह जिनवाणी तरस रहे हैं॥
देख भावना गुरु उपदेश सुनाये॥ ६४॥

मुक्ति-महल का सुख सच्चा जो चाहे
तो हमें बदलनी होगी अपनी राहें।
मिथ्यात्व के मग पर अब तक चलते रहे हैं
इस कारण ही तो दुख अनन्त सहे हैं॥
यह महारोग है, इससे निज को बचाये॥ ६५॥

मिथ्यात्व शत्रु है, अन्धकार यह भारी
अन्तर आँखों का जाला महा दुखकारी।
जब तक नहीं हटता आत्मा गोता खाती
जी जी मर मर वह दुःख अनंत उठाती॥
अतः इसे तज समकित पथ अपनाये॥ ६६॥

परम मित्र है सम्यग्दर्शन जानो
नहीं ऐसा हितैषी सत्य आप यह मानो।
सम्यक्त्व यह संसार हमारा घटाता
मिथ्या भ्रम मन का सहजतया मिट जाता॥
भव भ्रमण अन्त भी इसके बाद ही आये॥ ६७॥

सम्यक् दर्शन निज की पहचान कराता
सुदेव, गुरु, सद्धर्म से हमें मिलाता।
अन्तर्मुखता का बाग यह महकाता
अरु समरसता का रस भी हमें चखाता॥
वीतरागता का यह भाव जगाये॥ ६९॥

बिन आभा अपना मूल्य खोता है मोती
बिन प्राण देह की कीमत भी नहीं होती।
नींव बिना नहीं महल खड़ा रह पाता
पानी के बिना नहीं खेत कभी लहलहाता॥
सम्यक्त्व बिना भी साधना नहीं हो पाये॥ ७०॥

दान, शील, तप, जप हो चाहे जितना,
बिन समकित के तो फले नहीं वह उतना।
बिन इसके ज्ञान भी बने न मुक्ति दाता
चारित्र मोक्ष से जुड़ा न पाये नाता॥
अतः आप सम्यक् दर्शन प्रगटाये॥ ७१॥

सम्यक् दृष्टि रहता है जग में ऐसे
रहता है नीर में नीरज निशदिन जैसे।
संसार कार्यों में उसको रस नहीं आता
अन्तर का उजाला बढ़ता ही है जाता॥
अतः पराक्रम समकित में दिखलाये॥ ७२॥

दोहे

महिमा सुन सम्यक्त्व की, श्रोता भाव विभोर
शब्द-शब्द उपदेश था, नाच उठा मन-मोर।
मर्मस्पर्शी व्याख्या वह, विरति पोषक भाव
सुनने हेतु थम गये, मानो पवन के पाँव।
विहग वृक्ष की डाल पर, बैठे कलरव छोड़
मानो वे भी ला रहे निज जीवन में मोड़।

पूर्ववत्

सुन जिनवाणी सबका ही मन हरसाया
कर प्रवचन पूरा मंगल पाठ सुनाया।
कर बद्ध सभी चरणों मे शीश झुकाए
ले यथाशक्ति संकल्प सभी घर जाए॥
अब मणीचन्द्र चल गुरु निकट है आये॥ ७३॥

जिनभक्त श्रेष्ठी ने पाँव गुरु के चूमे
वह बीन के आगे नाग सरिस है झूमे।
रोम-रोम है अंचित गुरुवर मेरा
है परम कल्याणी वाणी, हरे अंधेरा॥
जो अपनाये भव-सागर वह तिर जाये॥ ७४॥

निर्ग्रन्थ धर्म दुख भंजक, सत्य अनुत्तर
संशुद्ध, पूर्ण, निर्मल अरु मंगलकर।
दृढ़ श्रद्धा आज से इस पर करूं मैं गुरुवर !
नित करूंगा पालन रूचि, प्रतीति रखकर॥
धर्म ही सचमुच सच्चा साथी कहाये॥ ७५॥

सुन स्वरूप सम्यक् दर्शन का हे गुरुवर !
मोह-निद्रा से तो जागा मेरा अन्तर।
अब नहीं माया के चक्कर में उलझूंगा
अन्तर में रमण कर भव की पीड़ हरूंगा॥
गुरुदेव ! कृपा कर समकित आप दिलाये॥ ७६॥

देव मेरे अरिहंत भजूं बस जिन को
जो रागी देव हैं ध्याऊँ नहीं मैं उनको।
रसना से भी गुणगान उन्हीं का करूंगा
मस्तक भी उनके ही चरणों में धरूंगा।
कुदेवों को मन कभी न मेरा ध्याये॥ ७७॥

गुरु मेरे हैं निर्ग्रन्थ महाव्रत धारी
समिति - गुप्ति के पालक, पाद बिहारी।
जो राग - द्वेष रत, तिरे भला क्या तारे
जो स्वयं डूब रहे, वे क्या हमें उबारे॥
सुगुरु ही जीवन-बगिया को महकाये॥ ७८॥

अरिहंत प्रभु ने जो कुछ था उच्चारा
वही तत्त्व धर्म का रूप मैंने स्वीकारा।
सत्य, अहिंसा, संयम, तप है प्यारा
दुर्गति से रक्षा करे यह धर्म हमारा॥
यह समकित मुझ को स्वामी ! आज दिलाये॥ ७९॥

एक नियम यह और लेना मैं चाहूँ
सुपात्र दान देकर ही भोजन पाऊं।
संत-सती को नहीं दे पाऊं जिस दिन
आहार करूं नहीं मैं तो गुरुवर उस दिन॥
दृढ़ भाव देख गुरु प्रत्याख्यान कराये॥ ८०॥

खुश होके नियम ले श्रेष्ठी निज घर आया
अब उसको लगने लगी झूठी जग माया।
ओह ! मोह ने मुझको कितना यहाँ रुलाया
नाना गतियों में इसने ही भटकाया॥
अब सजग बनूं मैं भटकन यह मिट जाये॥ ८१॥

रह समद्रष्टा सब काम श्रेष्ठी अब करता
हो कहीं न मुझसे पाप सदा वह डरता।
जो नियम लिए दृढ़ता से उनको पाले
अप्रमत्तभाव से दोष नित्य वह टाले॥
धर्म ध्यान में अपना समय बिताये॥ ८२॥

धर्मनिष्ठ थे नगरी के नर-नारी
आते ही रहते संत सती गुणधारी।
करे प्रेम से भक्ति उनकी श्रेष्ठी
जपे जाप वह सदा पंच परमेष्ठी॥
सुपात्र दान देकर ही भोजन पाये॥ ८३॥

सहधर्मी जनों की खुलकर सेवा करता
हो किसी तरह का कष्ट उसे वह हरता।
लिये नियम का करे हर्ष से पालन
यों कर्म-मैल का करे नित्य प्रक्षालन॥
महिमा श्रेष्ठी की नित्य फैलती जाये॥ ८४॥

संत-सती नगरी में जो भी आते
वे जान श्रेष्ठी के भाव मुदित हो जाते।
अहो ! जागृति कैसी इनकी शुभतम
है प्रशंसनीय अरु प्रेरक, पावन, उत्तम॥
करे निर्जरा जो निज को जगाये॥ ८५॥

यदा कदा दिन ऐसे भी थे आते
नहीं संत-सती के दर्श उन्हें हो पाते।
बिना बहराये श्रेष्ठी कुछ नहीं खाता
रह भूखे भी वह नहीं कभी घबराता॥
परिजन तो उनके चिंता भले ही लाये॥ ८६॥

यों समय श्रेष्ठी का नित्य बीतता जाता
जो सुनता अंगुली दांतों तले दबाता।
मणीचन्द्र की सचमुच भावना ऊँची
भू से उठ सुरभि देव लोक तक पहुँची॥
हो बंध कस्तूरी गंध नहीं रुक पाये॥ ८७॥

देवराज ने महिमा जब यह जानी
भरी सभा में उसको वहाँ बखानी।
धन्य धरा पर श्रेष्ठी समकित धारी
है मणीचन्द्र गुण आगर, धर्म पुजारी॥
जो लेता नियम दृढ़ता से उन्हें निभाये॥ ८८॥

सुन देव एक मिथ्यात्वी मन में सोचे
वह दांत भींचकर बाल स्वयं के नोचे।
क्या देवों से भी नर होता है बढ़कर
जो करे प्रशंसा सुरपति यों बढ़ चढ़कर॥
क्या देव के आगे मनुज कभी टिक पाये॥ ८९॥

मैं मणीचन्द्र की जा के परीक्षा लूंगा
है तिलों में कितना तेल यह जानूंगा।
मैं तरह-तरह से उसको जा परखूंगा
शचिपति की वाणी मिथ्या सिद्ध करूंगा॥
मन ही मन वह भारी रोष कराये॥ ९०॥





द्वितीय – पटल

परीक्षा

दोहे

सज्जन सोचे नित भला, बुरा सोचता दुष्ट।
देख तड़पते अन्य को, होत दुष्ट अति तुष्ट॥
कर न सके शुभ और का, दुर्जन मन कु विचार॥
'कमल प्रभा' दुख दूर कर, सज्जन खुशी अपार॥
मिथ्यात्वी वह देव भी, मन में करे विचार।
शूल बिछा कर सेठ को, करना है लाचार॥

पूर्ववत्

अदृश्य होकर वह देव नगर में आया
श्रेष्ठी के प्रति ईर्ष्या का भाव बढ़ाया।
सोचे सुरपति ने महिमा जो थी गाई
उसकी मुझको तो करनी पूरी सफाई॥
देखूं कैसे यह नियम निभा निज पाये॥ १॥

सर्व प्रथम चक्कर यह सुर ने चलाया
जो संत-सती थे मन उनका बदलाया।
एक एक कर विहार सब कर जाए
नहीं वहाँ एक भी संत कोई रह पाए॥
नये भी विचरण करते नहीं हैं आये॥ २॥

आये भी कैसे पहरा देव लगाये
है प्रयत्न पूरा कोई इधर नहीं आये।
जो कनकपुरी की ओर उठाता पग है
कुछ दूरी पर जा बदल लेता वह मग है॥
मन के भावों को देव वह पलटाये॥ ३॥

नित्य नियम कर श्रेष्ठी करे प्रतीक्षा
प्रारम्भ हो गई उसकी देव परीक्षा।
बीता दिन नहीं संत-सती कोई आए
इन्तजार में ही दिन निकल वह जाए॥
ला रहम रात्रि उनको निज गोद सुलाये॥ ४॥

नई आश ले रवि आए, ढल जाए
पर संत सती नहीं कोई नगर में आए।
निकल रहे श्रेष्ठी के दिन पर दिन हैं
पर चिंता नहीं चेहरे पर, खिन्न न मन है॥
तन शिथिल भले पर तेज वदन पर छाये॥ ५॥

परिजन की अब तो लगी धड़कने छाती
क्यों नहीं भावना श्रेष्ठी की फल पाती।
करते प्रतीक्षा मास बीतने आया
पर नहीं अभिग्रह इनका तो फल पाया॥
सुने वही मिलने श्रेष्ठी घर जाये॥ ६॥

आ आ सब कहते ढील आप कुछ दीजै
नहीं अन्न भले पर आहार फलों का लीजै।
संतों का क्या वे आए नहीं भी आए
बिना खाये यह तन कैसे टिक पाए॥
नहीं रहे देह यदि साधना हो नहीं पाये॥ ७॥

कनक केतु ने सुना तो वह भी आया
मणीचन्द्र को महीपति ने समझाया।
जो इच्छा हो, उतना, वैसा ही ले लो
है जीवन यह अनमोल न इससे खेलो॥
खाने के लिए नहीं, जीवन हित ही खायें॥ ८॥

हे राजन् ! मैंनें नियम लिया गुरु आगे
अब आप ही कहिए उसको कैसे त्यागे।
चाहे मृत्यु की गोद में चला मैं जाऊं
पर नियम भंग कर खाना नहीं मैं खाऊं॥
संकल्प त्याग कर क्यों संसार बढ़ाये॥ ९॥

समझा समझा कर कनककेतु भी हारा
हैरान श्रेष्ठी की हठ पर नगर वह सारा।
आए, समझा कर जाए एक न माने
माने भी कैसे नियम-मर्म जो जाने॥
क्या नियम से जीवन बढ़कर ? आप बताये॥ १०॥

तप का तेज चेहरे पर चमक रहा था
संकल्प-निष्ठा का रंग भी दमक रहा था।
सच सोना आग में तपकर चमक बढ़ाता
पीतल जो होता काला वह पड़ जाता॥
सुर अपना जोर श्रेष्ठी पर चला न पाये॥ ११॥

सोचे देव अब क्या मैं तीर चलाऊं
ऐसे तो उसको डिगा नहीं मैं पाऊं।
अच्छा हो कि मैं संत रूप में जाऊं
जाने पर क्या हो पता यह मैं लगाऊं॥
यह सोच संत बाने में बाग वह आये॥ १२॥

देख संत उद्यान-माली हरसाए
अहो ! आज श्रेष्ठी की प्रतिज्ञा फल जाए।
तत्क्षण ही उसने कार्य हाथ का छोड़ा
शुभ समाचार यह कहने नगर में दौड़ा॥
कुछ ही क्षणों में बात फैल है जाये॥ १३॥

दौड़-दौड़ नर-नारी बाग में आए
सिर झुका चरण में श्रद्धा सुमन चढ़ाए।
जब चारों ओर वे अपनी नजर दौड़ाए
नहीं संत दूसरा उन्हें नजर कोई आये॥
क्या बात अकेले ही ये कैसे आये॥ १४॥

कहीं देख अकेला चमक नहीं ये जाए
यह सोच देव वह उनको बात बताए।
कल बैठे-बैठे ज्ञान में मैंने जाना
सुपात्रदान बिन खाए श्रेष्ठी न खाना॥
तब विचार मन में मेरे ऐसे आये॥ १५॥

अगर कोई नहीं संत इधर आएंगे
तो श्रेष्ठी कैसे नियम निभा पाएंगे।
आहार बिना तन भी तो नहीं टिक पाए
दूर-दूर तक संत नजर नहीं आए॥
तब सोचा हम ही जाकर प्राण बचाये॥ १६॥

मैं गगन मार्ग से चलकर यहाँ पर आया
कह दो जा उनसे भाग्य तुम्हारा सवाया।
यदि दर्शन कर वह श्रेष्ठी भावना भाए
तो चल उनके घर आहार उनसे पाए॥
सुन बात संत की श्रावक दौड़ लगाये॥ १७॥

अहो ! श्रेष्ठिवर ! खुश खबरी हम लाए
मुनि लब्धिधारी आज एक हैं आए।
बड़े ज्ञानी वे, बात ज्ञान से जानी
ला दया आप पर आए वे गुणखानी॥
जो कहा संत ने ज्यों का त्यों दोहराये॥ १८॥

सुन खुला श्रेष्ठी मन के चिन्तन का ताला
वे लगे सोचने है कुछ दाल में काला।
मुझ प्राणों से क्या उनको लेना देना
संतों का काम है नैया भव से खेना॥
क्या कारण मुझ पर मोह भाव दरसाये॥ १९॥

संत होते हैं वीतरागता पोषक
रागादि विकारों के वे होते शोषक।
साथ लिये जिस तन को भू पर आए
उस देह पर भी ममत्व नहीं वे लाए॥
फिर क्यों मुझ पर वे प्रेम भाव दरसाये॥ २०॥

बात दूसरी विनती करने जाऊं
आएंगे तब वे, बात समझ नहीं पाऊं।
संत तो आते गोचरी बिना बुलाए
यह कैसा नियम जो उन्हें बुलाने जाए॥
क्या चक्कर है, सिर चक्कर मेरा खाये॥ २१॥

सबसे अच्छा मौन यहाँ मैं धारूं
भला इसी में शब्द न एक उच्चारूं।
यही सोच वह मुख से कुछ नहीं बोले
मौन धार कर बैठा तनिक न डोले॥
उत्तर नहीं पा जो आए लौट वे जाये॥ २२॥

जो जो भी गए वे लौट एक नहीं आए
यह देख देव वह मन ही मन अकुलाए।
लगता है मुझे नहीं सेठ यहाँ पर आए
यदि नहीं आए तो काम कैसे बन पाए॥
कुछ बोले आप ही जाकर दर्श दिलाये॥ २३॥

मुनि बोले तो फिर चलो वहीं हम चलते
वे नहीं आए हम ही उनसे जा मिलते।
आखिर तप से कमजोरी तो है आए
इस कारण शायद नहीं यहाँ आ पाए॥
ऐसा कह मुनि वे आसन से उठ जाये॥ २४॥

भव्य वदन पर दिव्य तेज झलकाते
मुनि धीमे-धीमे आगे कदम बढ़ाते।
जो जो भी देखे उनको शीश झुकाए
कुछ पीछे-पीछे उनके पाँव बढ़ाए॥
शनैः शनैः इक जुलूस वहाँ बन जाये॥ २५॥

चलते-चलते मणीचन्द्र घर आए
आ देखा श्रेष्ठी बैठा ध्यान लगाए।
कृश काया उनकी कंचन जैसी दमके
आभा अन्तर की भव्य वदन पर झलके॥
देख मुनि को बैठे जन उठ जाये॥ २६॥

"दया पालिये" जोर से संत उच्चारे
हे भक्त शिरोमणे ! आया मैं तुम द्वारे।
निज ज्ञान से तुम पर देखी संकट छाया
मैं इसीलिए तो चलकर यहाँ तक आया॥
सोचा विपदा के बादल दूर हटाये॥ २७॥

कुछ श्रावक बोले-अहो श्रेष्ठिवर ! उठिये
दे सुपात्रदान निज नियम पूर्व तुम करिये।
सौभाग्य से गंगा आई अपने द्वारे
प्रतिलाभित करके अपना भाग्य संवारे॥
भक्ति भाव से आहार आप बहराये॥ २८॥

वह मणीचन्द्र चुपचाप जपे बस माला
मुख पर तो मानो लगा है उसके ताला।
नहीं खोले नयन, नहीं उठकर शीश झुकाए
यह देख नगर जन अचरज मन में लाए॥
अरे अहं इनको यह, समझ न आये॥ २९॥

क्या धर्म यह कि संत अवज्ञा करना
क्या अहं भाव रख भव-सागर हो तिरना।
संतों से भी बढ़कर क्या श्रावक होता ?
यह धर्म ज्ञान का मात्र बोझ है ढ़ोता॥
हमने समझा कुछ और, नजर कुछ आये॥ ३०॥

शान्त भाव से सुने श्रेष्ठी सब बातें
अपने मन में वह सूत अलग ही काते।
ना डोले, ना कुछ मुख से वह तो बोले
बस हृदय-तराजू में साधु को तोले॥
ये संत कैसे कुछ बात समझ नहीं आये॥ ३१॥

सुपात्रदान क्या जबरन लिया है जाता
दे दे, ले-ले पर दान नहीं कहलाता।
वस्तु एक मालिक दो, एक ही देता
भाव दूसरे का नहीं, संत न लेता॥
यह नियम संत चर्या का हमें सिखाये॥ ३२॥

इधर संत कुछ क्षण को मौन खड़े हैं
उधर श्रेष्ठी भी अपने व्रत पे अड़े हैं।
संत नहीं ये दिखता कुछ घोटाला
मणीचन्द्र जी सोचे है कुछ काला॥
अतः मौन रहने में सार दिखलाये॥ ३३॥

खड़े रहे चुपचाप मुनि वे कुछ पल
है मची हुई मन उनके भारी हलचल।
डिगे कैसे भी यही बात मैं चाहूँ
ना बने काम यदि मन ही मन शरमाऊं॥
नयन खोल नहीं श्रेष्ठी नजर उठाये॥ ३४॥

स्थिर देख श्रेष्ठी को अहं देव का जागा
वह बोला सेठ रे लगे तू मुझको अभागा।
जिन भक्त समझ कर ही मैं यहाँ पर आया
पर रूप यहाँ कुछ ओर ही मैंने पाया॥
संत वेष में सुर वह रोष दिखाये॥ ३५॥

सुन के प्रशंसा फूला मैं न समाया
जिन शासन ने तुम जैसा श्रावक पाया।
पर धर्मनिष्ठ नहीं, पूरे तुम बगुले हो
मन मैला तुम्हारा ऊपर से उजले हो॥
धर्म का मर्म न जाने व्यर्थ इतराये॥ ३६॥

संत सामने खड़े, रहो तुम बैठे
यह धर्म कौन सा अकड़ में जो यों ऐंठे।
धर्म तो ऐसा कभी नहीं सिखलाता
व्यर्थ ढोंग रच जग को मूर्ख बनाता॥
भोले हैं लोग जो चक्कर में आ जाये॥ ३७॥

अरे श्रावको ! सचमुच यह पाखण्डी
देख रहे हो, कितना यह घमण्डी।
आप लोगों ने इसको खूब चढ़ाया
है धर्मी, ध्यानी, दानी झूठ बताया॥
मुझे तो ऐसा नजर नहीं कुछ आये॥ ३८॥

कुछ बोले - सेठ जी हठ यह उचित नहीं है
दो दान, प्रतिज्ञा पूर्ण हो, उचित यही है।
सौभाग्य मानिये संत जो चलकर आए
सुपात्रदान का आप तो लाभ उठाए॥
करो जल्दी यह मोका चला नहीं जाये॥ ३९॥

बोला एक तब अब सब भीड़ हटाए
है भला इसी में निज-निज घर हम जाए।
बार-बार कहने में सार नहीं है
समझाये कैसे ये तैयार नहीं है॥
गुरु आप पधारे विचार कुछ नहीं लाये॥ ४०॥

भांति-भांति की बातें लोग बनाते
श्रेष्ठी को कोसते हुए घरों को जाते।
अवधि ज्ञान से देव श्रेष्ठी को देखे
है दृढ यह नियम पर कभी न घुटने टेके॥
अतः सार यही अपनी माया हटाये॥ ४१॥

दोहे

हुआ अचानक कक्ष में, अद्भुत दिव्य प्रकाश।
हतप्रभ सब जन रह गये, थमी सभी की श्वांस॥

साधु नहीं अब कक्ष में, खड़ा वहाँ सुर एक।
कर जोड़े, हर्षित हृदय, रहा श्रेष्ठी को देख॥

करे प्रशंसा श्रेष्ठी की, धन्य तुम्हें नरराज।
धनी आप संकल्प के, गूँज उठी आवाज॥

भरी सभा में इन्द्र ने, जब यह किया बखान।
मणीचन्द्र सम अवनि पर, ना ही निष्ठावान॥

डिगे नहीं संकल्प से, धर्मनिष्ठ वह वीर।
भले कष्ट आए कई, कभी बने न अधीर॥

शचिपति की यह बात सुन, मन छाया परिहास।
सुर आगे नर ना टिके, था पक्का विश्वास॥

किया परीक्षण आपका, देकर मैंने कष्ट।
लेकिन दृढ़ता देखकर, तमस हुआ मम नष्ट॥

सुना वही पाया यहाँ, तुमको मेरा प्रणाम।
हे श्रेष्ठी। तेरा रहे, युगों युगों तक नाम॥

सुर दानव से भी अधिक, मनुज होत बलवान।
हे श्रेष्ठी ! यह आज ही, पाया मैंने ज्ञान॥

सारण ऋषि कल आएंगे, करते हुए विहार।
करो पारणा आप तो, दे उनको आहार॥

रत्नहार पहना गले, देव गया निज लोक।
टला यहाँ उपसर्ग भी, सिमटा वह आलोक॥

पूर्ववत्

नृप कनककेतु ने समाचार जब जाना
मिलने श्रेष्ठी से त्वरित हुआ रवाना।
किया सभी ने स्वागत नृप जब आया
श्रेष्ठी को भूप ने अपने गले लगाया॥
अहो भाग्य जो देव दरस हैं पाये॥ ४२॥

सेवक ने आ वृत्तान्त सुनाया सारा
अद्‌भुत ही देखा स्वामी। आज नजारा।
रोक न मैं महलों में निज को पाया
की देर नहीं , मैं तुरत दौड़ यहाँ आया॥
खुशी के अश्रु नृप नयनों में छाये॥ ४३॥

हर्षानुभूति है आज मुझे तो भारी
मेरी नगरी में आप से धर्म के धारी।
देव परीक्षा लेने धरा पर आया
पर नहीं नियम से विचलित वह कर पाया॥
श्रद्धा से गद्‌गद महीपति वहाँ हो जाये॥ ४४॥

मंत्री और संतरी भी वहाँ पर आए
वे बोले आज हम भी यहाँ कुछ नहीं खाए।
सुर ने कहा सारण ऋषि कल आएंगे
हम भी दर्शन कर ही भोजन पाएंगे॥
धर्म - ध्यान, जप-तप में रात बिताये॥ ४५॥





तृतीय – पटल

प्रत्याख्यान

दोहे

प्राची में सूरज उगा, फैला शुभ्र प्रकाश।
किरणों ने तोड़े सभी, अंधकार के पाश॥
चटकी कलियाँ सुमन की, षट्पद का है शोर।
पंछी भी कलरव करे, लगे नाचने मोर॥
भव जीवों को तारते, संत पधारे बाग।
कुहुक – कुहुक कोयल कहे, जागा श्रेष्ठी भाग॥
संत मण्डली देखकर, वनमाली हरसाय।
सूचित करने श्रेष्ठी को, दौड़ नगर में जाय॥
जो जो भी पथ में मिले, सबको यही सुनाय।
'कमल प्रभा' मन–सुमन सुन, सबके ही खिल जाय॥
श्रेष्ठी भवन में पहुँच कर, जोड़े दोनों हाथ।
संत पधारे बाग में, सत्य कहूं हे नाथ !
सुनकर श्रेष्ठी उठ चला, दृश्य बड़ा सुखकार।
परिजन भी संग में चले, लेकर खुशी अपार॥
विधिवत् वंदन कर सभी, बैठे निज निज स्थान।
देख भावना अब वहाँ, देते मुनि व्याख्यान॥

पूर्ववत्

राग छोड़ जो वीतराग को ध्याता
धन, परिजन मोह में उलझ न समय गंवाता।
ममता का बंधन भव-भव में जो रुलाता
उसे तोड़ने वाला ही सुख पाता॥
समझो रे भाइयो ! ज्ञानी जो समझाये॥ १॥

संसार तरु है, मोह मूल तुम मानो
यह मूल हरा संसार हरा तुम जानो।
उखाड़ जड़ से मोह को जिसने फैंका
उसने ही मिटाई कर्मों की यह रेखा॥
सच्चा सुख भी तो वही आत्मा पाये॥ २॥

राग-रोष अरु काम, क्रोध, मद, माया
परिवार मोह का ही इनको है बताया।
जैसे फिटकरी दूध को पल में फाड़े
वैसे ही ये सब जीवन अपना बिगाड़े॥
भला इसी में निज को इनसे बचाये॥ ३॥

समभावों में रहने की कोशिश करिये
यह रिक्त हृदय-घट ज्ञान से इसको भरिये।
अज्ञानता वश ही नर संसार बढ़ाता
विषय-सुखों पर ललचा दुःख उठाता॥
विष सम आत्मा को ये बेचैन बनाये॥ ४॥

धर्मशरण लो मत भोगों में उलझो
मानव जीवन की महिमा भाई समझो।
नर भव में ही मिले धर्म का मोका
जो नहीं करे तो बहुत बड़ा है धोखा॥
धर्म बिना नर जग में पशु कहाये॥ ५॥

धर्म-पूंजी श्रेष्ठी ने कैसी बढ़ाई
देवों तक ने भी महिमा देखो गाई।
धर्म निष्ठा हो कैसी इनसे सीखे
सच धर्म बिना जीवन के सुख सब फीके॥
धर्म शक्ति अजेय देव झुक जाये॥ ६।

कृषक धरा को जैसे साफ बनाता
हो कंकर, पत्थर, कांटे, झाड़ हटाता।
यदि हो न ऐसा तो व्यर्थ जाये श्रम सारा
सींचें चाहे कोई लाकर गंगा धारा।
जैसी चाहे वह फसल नहीं मिल पाये॥ ७॥

इसी तरह मन से रागादि हटाये
जीवन को निर्मल, पावन, शुद्ध बनाये।
हृदय शुद्ध हो जाए फिर क्या चाहे
खुलेगी तब तो सच्चे सुख की राहें॥
है समय अभी भी जीवन अपना सजाये॥ ८॥

सुन के देशना झूम उठे नर नारी
लौट रहे ले प्रेरणा मंगलकारी।
मणीचन्द्र कहे स्वामी कृपा कराओ
सेवा का गुरुवर ! हमको लाभ दिराओ॥
यह कहते हुए वह वंदन कर बढ़ जाये॥ ९॥

संत भी गोचरी लेने नगर में जाए
लेते लेते मणीचन्द्र घर आए।
उलट भाव से श्रेष्ठी आहार बहराये
तत्क्षण देवों ने सुमन वहाँ बरसाये॥
बजी दुंदुभि, पंच दिव्य प्रगटाये॥ १०॥

मुनि तो लेकर गोचरी निकल पड़े हैं
नभ में सुर, भू पर नर कर बद्ध खड़े हैं।
सभी श्रेष्ठी का भाग्य सराहते जाते
धर्म प्रति वे श्रद्धा भाव जगाते॥
प्रमुदित मन हो श्रेष्ठी पहुँचाने जाये॥ ११॥

कुछ दूर पहुँचा वह वंदन कर मुड़ जाए
नृप, मंत्री आदि श्रेष्ठी संग घर आए।
किया पारणा सेठ ने महिने भर का
दूर-दूर तक फैला नाम नगर का॥
जन जन मुख पर श्रेष्ठी नाम लहराये॥ १२॥

जिन धर्म प्रति जनता में भाव नव जागे
युवा, बाल, सब रहे धर्म में आगे।
सारण ऋषि उपदेश नित्य ही देते
संकल्प विविध वे नर नारी हैं लेते॥
धर्म देशना सुनने सब ही जाये॥ १३॥

मानव भव है अनमोल मुनि बतलाते
व्रत, त्याग, तपस्या की महिमा समझाते।
एक दिवस प्रकाश व्रतों पर डाला
है चाबी व्रत जो खोले मुक्ति ताला॥
टूटे बंधन, व्रत बन्धन जो अपनाये॥ १४॥

जिस तरह बाड़ से खेत सुरक्षित रहता
कूलों के मध्य पय सुखद रूप में बहता।
इनके बिना जो दशा बने वह जानो
व्रत बाड़ कूल है जीवन के तुम मानो॥
लक्ष्मण रेखा व्रत, संकट से जो बचाये॥ १५॥

अव्रती रह यह जीव भ्रमण करता है
दुख पाता, जीता बार-बार मरता है।
अतः जीवन निज व्रतमय भाई बनाओ
क्यों रहके खुले तुम यह संसार बढ़ाओ॥
व्रत क्या है ध्यान से सुनिये अभी सुनाये॥ १६॥

असीम इच्छाओं का जो सीमाकरण है
प्राणातिपात आदि का जो विरमण है।
अमर्यादित जीवन का नियंत्रीकरण है
संकल्प, प्रतिज्ञा रोके मन विचरण है॥
जिन दर्शन व्रत परिभाषा यह समझाये॥ १७॥

अणुव्रत-महाव्रत भेद कहे दो व्रत के
गृहत्यागी होते पथिक महाव्रत पथ के।
पूर्ण अहिंसास्तेय, सत्य का पालन
त्याग परिग्रह, ब्रह्मचर्य यावज्जीवन॥
ये पांच महाव्रत भव का भ्रमण मिटाये॥ १८॥

महाव्रती अणगार, श्रमण कहलाता
निर्ग्रन्थ, सन्त, साधु कह जग बतलाता।
कनक कामिनी का वह त्यागी होता
परदत्त ग्राही बन कर्म-मैल वह धोता॥
धन्य वह जो महाव्रत को अपनाये॥ १९॥

गृहस्थ साधक अणुव्रत का जो धारी
जिनशासन प्रति जो निष्ठावान रसधारी।
रुचि पूर्वक जिनवाणी सुन श्रद्धा करता
पाप कर्म करते जो मन में डरता॥
श्रावक या श्रमणोपासक वह कहाये॥ २०॥

श्रावक के व्रत हैं द्वादश पहला सुनिये
त्रस जीवों की हिंसा से भाई बचिये।
स्थावर सीमा कर पापों से मुँह मोड़े
है हिंसा नरक पथ इस पर चलना छोड़े॥
स्थूल झूठ का त्याग द्वितीय सिखाये॥ २१॥

बड़ी चोरी मत करो तृतीय बताता
सन्तोष स्वदारा में चौथा कहलाता।
पंचम में परिग्रह का परिमाण है करना
है षष्ठ दिशा मर्यादा रख पग धरना॥
मर्यादा में रहने वाला सुख पाये॥ २२॥

भोगोपभोग के योग्य वस्तुएं जितनी
आवश्यकता हो रखले भाई उतनी।
शेष त्याग सप्तम व्रत में तुम करिये
छब्बीस बोल सीमा कर आप विचरिये॥
कर्मादान तज पाप से निज को बचाये॥ २३॥

अनर्थ दण्ड का त्याग जानिए अष्टम
अरु शुद्ध सामायिक आराधन है नवम।
जो व्रत सीमा को फिर संक्षेप बनाए
देशावकाशिक व्रत दसवाँ कहलाए॥
संवर की साधना कर व्रत यह अपनाये॥ २४॥

व्रत अन्तिम है निष्काम भावना रखकर
निर्दोष, शुद्ध आहारादि दे हरसा कर।
यों द्वादश व्रत जो भी प्राणी अपनाता
वह जैन धर्म में व्रती श्रावक कहलाता॥
व्रतधारी बन आत्मिक सुख सच्चा पाये॥ २६॥

सुन करके व्रत स्वरूप सभी हरसाए
इच्छानुरूप व्रत ले ले घर वे जाए।
मणीचन्द्र उठ मुनि के पास है आए
आकर के श्रद्धापूर्वक शीश झुकाए॥
हो भाव विभोर वह अपने भाव सुनाये॥ २७॥

आत्म शक्ति है प्रबल आपकी गुरुवर !
जो लीन साधना में हो जग से हटकर।
पाओगे आप मंजिल जिन पथ पर चलकर
क्या करूं आपसे समता मैं हूँ कायर॥
आप जैसा पुरुषार्थ नहीं हो पाये॥ २८॥

है मार्ग संयम का बहुत ही दुष्कर जानूं
नहीं इसके बिना है मुक्ति यह भी मानूं।
पर अभी नहीं इस योग्य साहस कर पाऊँ
जो घर परिजन को तज संयम अपनाऊं॥
अतः बारह व्रत स्वामी आप दिलाये॥ २९॥

त्रस जीवों को मैं चाह कर नहीं सताऊं
स्थूल मृषा व स्तेय से निज को बचाऊं।
पर दारा को मैं मानूं भगिनी, माता
कर सीमा धन वैभव की मूर्च्छा हटाता॥
दिक् भोगोपभोग का भी परिमाण कराये॥ ३०॥

कर्मादान, अनर्थदण्ड मैं टालूं
सामायिक पहला कर्म नियम यह पालूं।
संवर पौषध कर निज का करूं मैं पोषण
निर्दोष दान दे करूं पाप का शोषण॥
मुनि देख भावना प्रत्याख्यान कराये॥ ३१॥

दोहे

कनकपुरी में बढ़ गया, और श्रेष्ठी का मान।
नृप ने अभिनंदन किया, दिया बहुत सम्मान॥

तरु फल पा जैसे झुके, श्रेष्ठी झुकता जाय।
अहं भाव दिल में कभी, अपने नहि वह लाय॥

जीवन का विश्वास क्या, समय व्यर्थ ना जाय।
दान, धर्म, आराधना, उत्तम भाव जगाय॥

सुभद्रा पति संग में, करे धर्म अरु ध्यान।
सामायिक, स्वाध्याय से, करे आत्मकल्याण॥



पथ की पुकार



चतुर्थ – पटल

पुण्योदय

दोहे

मंगल जिनवाणी सदा, मंगल सम्यक् ज्ञान।
मंगल दर्शन मानिये, है चारित्र प्रधान॥

तीर्थंकर मंगल सभी, सिद्ध और अणगार।
जप, तप मंगलकर यहाँ, धर्म करे उद्धार॥

अष्टादश जो पाप हैं, चढ़े आत्म पर भार।
'कमल प्रभा' इनसे बचे, उतरे भव से पार॥

मानव मन तो उदधि सा, लहर कोई उठ जाय।
बात–बात में बात से, दिल हरसे मुरझाय॥

पूर्ववत्

कनकपुरी में उत्सव इक दिन आया
आया क्या मन में लहर हर्ष की लाया।
चहल-पहल, हलचल नगरी में भारी
है चमक-दमक सब ही चेहरों पर न्यारी॥
इत से उत, उत से इत आये अरु जाये॥ १॥

नन्हें बच्चों का दृश्य हृदय को हरता
कोई फुदक कुदक कर अपने डग को भरता।
कुछ तात भ्रात के कंधों पर इठलाते
वे पैदल चलने वालों पर मुस्काते॥
कोई मात तात की थामें अंगुली जाये॥ २॥

माँ नन्हें शिशु को सीने से चिपकाती
जा रही सखी के साथ वह इठलाती।
निज कर से शिशु का सिर कोई सहलाती
कोई बैठ अकेले उसको दूध पिलाती॥
कुछ बालक हठ कर रूठ राह में जाये॥ ३॥

नन्हें बालक कुछ बोल रहे तुतलाते
भैया तेले तो छात नहीं हम जाते।
मुँह थोलो तुमने मीथी दोली थाई
था दये अतेले मुझ तो नहीं थिलाई॥
यों रुष्ट हुये को माता-बहन मनाये॥ ४॥

इधर सेठानी कोलाहल को सुनकर
आ बैठी देखने दृश्य वहाँ का मनहर।
और बातों पर टिका नहीं मन उसका
बस लगी देखने हावभाव शिशुओं का॥
नव-नव परिधानों से थे सजे सजाये॥ ५॥

सुभद्रा ने जब दृश्य बच्चों का देखा
वह लगी सोचने क्या है कर्म की रेखा।
बेटी से बहू मैं बनकर यहाँ पर आई
पत्नी रह मैंने कितनी उम्र बिताई॥
नारी निज महत्ता माँ बनने पर पाये॥ ६॥

वह लता लता क्या फूल न जिस पर खिलते
वह विटप विटप क्या जिस पर फल ना फलते।
सूनी कोंख ले इधर-उधर मैं डोलूं
मन करता मेरा बैठ आज तो रोलूं॥
अन्तर में पीड़ा उसके नहीं समाये॥ ७॥

जब तक आंगन में गूंजे नहीं किलकारी
ना मानूं निज को पूर्ण कभी मैं नारी।
नगरी में कोई मुझसी नहीं दुखियारी
अभागिन मानी जाती वन्ध्या नारी॥
तभी श्रेष्ठी बाहर से घर पर आये॥ ८॥

क्या बात आज यहाँ बैठ मौन क्यों धारा ?
क्यों म्लान बना है चेहरा प्रिये ! तुम्हारा ?
क्या मन में कोई दर्द बड़ा है गहरा ?
क्यों बादल तेरे इन नयनों में ठहरा ?
लगता मुझको कहीं बरस नहीं है जाये॥ ९॥

क्या कहा किसी ने उल्टा-सीधा तुमसे ?
बोलो क्या कोई भूल हुई है मुझसे ?
कमी हमारे घर में है क्या कोई ?
दिल खोल कहो प्रिये ! किन सपनों में खोई ?
कष्ट कोई हो शीघ्र मुझे दरसाये॥ १०॥

हिचकी लेकर के सिसक पड़ी सेठानी
रुद्ध कंठ, नहीं निकली मुख से वाणी।
प्रथम बार श्रेष्ठी ने देखा रोते
निज नयनों को अश्रु - जल से यों धोते॥
क्या कारण सुभगे ! मुझसे नहीं छिपाये॥ ११॥

तब रोका दुःख आवेग सेठानी बोली
बोली क्या उसने अन्तर-पीड़ा खोली।
हूँ स्वामी मैं अकृत पुण्या, अधन्या
नहीं पाई मैंने तभी पुत्र या कन्या॥
इस दुख से स्वामी मन मेरा अकुलाये॥ १२॥

सत्कर्म किया नहीं लगता पहले कोई
जो अब तक मैंने व्यर्थ जिन्दगी ढोई।
अपनी गोद में सुत को नहीं खिलाया
गा गा कर लोरी शिशु को नहीं सुलाया॥
ऐश्वर्य मुझे यह खुशी नहीं दे पाये॥ १३॥

कवित्त

नाथ ! मेरे मन में तो आ रही है एक बात
हाथ जोड़ती हूँ आज एक काम कीजिए।
मेरे भाग्य में तो लिखा नित विषपान पर
विनती है आपसे तो आप मत पीजिए।
बिना फूल पत्ती वाली लता अंगने की हूँ मैं
वक्त है अभी भी मुझे दूर कर दीजिए।
नारी हूँ अधूरी माता बनी नहीं नाथ ! मैं तो
कहती हूँ शादी आप अन्य कर लीजिये॥ १॥

अनुजा बना के उसे अंगने में रखूंगी मैं
चाहोगे तो आपसे मैं दूर चली जाऊंगी।
सुबह से ही मन मेरा हो रहा बेचैन आज
कुक्षि में दीप तो मैं जला नहीं पाऊंगी।
आंचल में दूध कभी उतरेगा मेरे नहीं
यहाँ रह धरती का बोझ ही बढाऊंगी।
अपने हाथों से दुल्हा आपको बनाऊं नाथ !
मारने को तोरण मैं अश्व पे चढ़ाऊंगी।। २।।

ऐसे शब्द मुख से क्यों तुमने निकाले प्रिये !
भूल से भी फिर कभी ऐसा मत बोलना।
अमी इस जीवन में तुम से घुला है प्रिये !
कह कर ऐसा तुम विष मत घोलना।
देर पर अंधेर नहीं विश्वास करो तुम
धर्म से हे देवी ! कभी भूल मत डोलना।
अन्तराय लगा होगा जीवन में अपने भी
ऐसी बात बोलने को मुख मत खोलना।। ३।।

पूर्ववत्

उत्तर में कुछ नहीं बोल सेठानी पाई
पर सूनापन नयनों में रहा दिखाई।
संतान बिना घर सूना-सूना लगता
दुख सुप्त हृदय का उसके तो अब जगता।।
सुत, सुता कोई भी प्रभो ! मुझे मिल जाये।। १४।।

चिन्ता में ही दिन निकल गया था पूरा
बिन संतति उसको जीवन लगे अधूरा।
भूख प्यास नहीं पास है उसके आई
निंदिया भी जाकर दूर कहीं सुस्ताई॥
आज तो कक्ष में जी घुट-घुट है जाये॥ १५॥

नव आभा लिये संध्या मुस्काती आई
संदेश खुशी का मानो वह तो लाई।
छोड़ो उदासी आने वाला चन्दा
चिंता, दुख मन का करलो अब तुम मंदा॥
स्वागत में तारक नई रोशनी लाये॥ १६॥

जब दैनिक कृत्यों से निवृत्ति पाई
पति-पत्नी बैठे सामायिक के मांई।
आत्म स्नान किया प्रतिक्रमण कर उनने
पर नहीं लिया रस आज श्रेष्ठी के मन ने॥
चिन्तन पर चिन्ता हावी होती जाये॥ १७॥

ले प्रभु नाम वह श्रेष्ठी कक्ष में सोया
लख चन्द्र गगन में सपनों में वह खोया।
आह झिलमिल झिलमिल कर रहे सुन्दर तारे
पर एक शशि से होते शोभित सारे॥
काश ! उतर चंदा मुझ घर में आये॥ १८॥

अब मणीचन्द्र सोया निद्रा में गहरा
पलकों में उतरा स्वप्न तोड़कर पहरा।
प्रकट हो करके कुलदेवी तब बोली
सोते सोते ही आँखें श्रेष्ठी ने खोली॥
स्वप्न अनोखा आनन्द रस बरसाये॥ १९॥

बहुत शीघ्र ही पुत्र - पुत्री तुम पाओ
घर किलक उठेगा मत मन में दुख लाओ।
पर एक बात का ध्यान तुम्हें दिलवाती
आगे होना क्या वह भी तुम्हें बताती॥
सुत बड़ा होने पर कष्ट तुम्हें पहुँचाये॥ २०॥

कुलदेवी स्वप्न में बात यह बतलाये
बतला कर अन्तर्धान तुरत हो जाये।
खुली नींद श्रेष्ठी मन में घबराया
क्यों स्वप्न आज ऐसा मुझको यह आया॥
चिंता से सिर श्रेष्ठी का चक्कर खाये॥ २१॥

दुखी करेगा सुत क्यों मुझको मेरा
आँखों के आगे इक पल तना अंधेरा।
फिर सोचे कल की चिन्ता में क्यों खोऊं
क्यों व्यर्थ अभी से शूल हृदय में बोऊं॥
कर्मों की लीला अपरम्पार कहाये॥ २२॥

सोचे श्रेष्ठी मैं घूंटी अच्छी पिलाऊं
दे संस्कार उत्तम बातें सिखलाऊं।
होता घट कच्चा, कोरा कागज बालक
बनता वह उत्तम जो उत्तम हो पालक॥
फिर होनी को तो टाल न कोई पाये॥ २३॥

नींद नहीं तो रहूँ यहाँ क्यों लेटा
यह सोच सामायिक करने श्रेष्ठी बैठा।
मन - मृग हृद्-भू पर बार-बार है उछले
चंचल चित्त उसका नहीं आज तो संभले॥
देवी वचन पर रह-रह ध्यान है जाये॥ २४॥

इत दी मुर्गे ने बांग उठी सेठानी
लख जगा श्रेष्ठी को मन में हुई हैरानी।
आज मेरे से पहले क्यों ये जागे ?
कारण है कुछ या धर्म में बढ रहे आगे॥
वह अपना आसन तुरत वहाँ बिछाये॥ २५॥

सामायिक ली प्रतिदिन की भांति उसने
है सफल जिन्दगी धर्म-शरण ली जिसने।
कर सामायिक पति चरणों शीश नवाया
अरु बोली – स्वामिन्! क्यों नहीं मुझे जगाया॥
क्या नींद न आई कारण आप बताये॥ २६॥

सुनो प्रिये ! इक स्वप्न रात में आया
कुलदेवी को तो खड़ा सामने पाया।
वह बोली जल्दी घर गूंजे किलकारी
अब मनोकामना होगी पूर्ण तुम्हारी॥
पहले पुत्र फिर पुत्री यह घर पाये॥ २७॥

इसी खुशी में निद्रा मुझे न आई
सुन स्वप्न श्रेष्ठी से सेठानी हरसाई।
प्रिय ! कुलदेवी के दर्शन मंगलकारी
अहो ! कितनी चिंता उनको नाथ ! हमारी॥
काश ! स्वप्न साकार यह हो जाये॥ २८॥

कुछ ही दिनों में स्वप्न ने रंग दिखाया
कोई जीव कुक्षि में सेठानी के आया।
फलती कामना देख हृदय हरसाए
शनैः शनैः वह गर्भ वृद्धि को पाए॥
रंगीन कल्पनाएं मन में लहराये॥ २९॥

गर्भकाल का मास तीसरा आया
दोहद यह अनुपम सेठानी मन छाया।
नव सहस संतों के दर्शन मैं तो पाऊं
जिन वाणी सुनकर जीवन सफल बनाऊं॥
बिना दर्श के चैन नहीं मन पाये॥ ३०॥

मन - सुमन श्रेष्ठी - पत्नी का तो मुरझाये
इतने संतों का योग कहाँ मिल पाये।
देख उदासी सेठ पास में आया
क्या बात आज क्यों वदन कमल कुम्हलाया॥
तब सेठानी दोहद की बात सुनाये॥ ३१॥

सुभगे ! छोड़ो चिन्ता यह दोहद प्यारा
हम पूर्ण करेंगे यह तो काम हमारा।
चहुँदिशि सेठ ने सेवक कई भिजवाये
हैं संत कहाँ, कितने यह सूचना लाये॥
राई की भांति अनुचर बिखर हैं जाये॥ ३२॥

चट्टानों से भी झरने देखो निकलते
हो पुण्य योग तो मनोभाव हैं फलते।
इक सेवक ने आ अपना शीश झुकाया
वाणिज्य ग्राम से स्वामी अभी मैं आया॥
छटा वहाँ की कही न मुझसे जाये॥ ३३॥

रचा देवों ने समवशरण वहाँ भारी
प्रभु वीर दर्श को दौड़ रहे नरनारी।
सहस चतुर्दश संत महाव्रत धारी
हैं तपस्वी, ज्ञानी ध्यानी महा उपकारी॥
यह मौका हाथ से स्वामी चला न जाये॥ ३४॥

स्वर्णहार श्रेष्ठी ने तुरत उतारा
सुसमाचार सुन हर्षित हृदय हमारा।
कर विदा सेठ जी निकट सेठानी आए
शुभ मिली सूचना खुश हो उसे सुनाए॥
सुनो सुभद्रे ! दोहद अब फल जाये॥ ३५॥

वाणिज्य ग्राम में प्रभुवर वीर पधारे
हैं साथ शिष्य गौतम आदि वे सारे।
अभी अभी सेवक ने आके सुनाया
यह देने सूचना पास तुम्हारे आया॥
मनोकामना फलीभूत हो जाये॥ ३६॥

नाथ ! आज तो अच्छी खबर सुनाई
कहते कहते नव आभा मुख छाई।
स्वामी ! नगर में समाचार भिजवाओ
चलना हो जिसको शीघ्र यहाँ आ जाओ॥
दर्शन पाकर ही चैन मेरा मन पाये॥ ३७॥

संदेश श्रेष्ठी ने आस पास भिजवाया
प्रभु दर्शन का यह स्वर्णिम अवसर आया।
श्रावक जन जो भी दर्शन करना चाहे
आमंत्रण देती उनको तो ये राहें॥
समाचार सुन भक्त हृदय हरसाये॥ ३८॥

सज धज कर कई श्रद्धालु निकल पड़े हैं
वाणिज्य ग्राम जाने को साथ खड़े हैं।
श्रावक श्रेष्ठी संग आगे बढ़ते जाते
जिनवाणी महिमा सुनते और सुनाते॥
सब हर्षित मन से समवशरण में आये॥ ३९॥

सिंहासन ऊँचा वीर प्रभु का सोहे
तीनों ही अनुपम दिव्य छत्र मन मोहे।
भव्य बने त्रिकोट वहाँ सुखकर हैं
रजत, स्वर्ण, मणि, माणिक के मनहर हैं॥
सब बैठे हुए हैं मन में शान्ति बनाये॥ ४०॥

प्रभुवर ने अमृत वाणी का बरसाया
बरसाया क्या आनन्द अनोखा आया।
मानो पतझड़ में उतर बसन्त है आया
सुरभित व शीतल पवन ग्रीष्म ने पाया॥
हिंसा का कटु फल कैसा प्रभु फरमाये॥ ४१॥

हिंसा है दुख का मार्ग नरक ले जाता
जहाँ हर पल नारक कष्ट अनेक उठाता।
प्यासे को बूंद, भूखे को एक नहीं दाना
पल पल में रंग बदलते दुख वहाँ नाना॥
सुख की किरण तो कभी कभी ही आये॥ ४२॥

कहाँ रोशनी वायु कहाँ सुहानी ?
भट्टी सुलगती ही जानो जिन्दगानी।
है स्पर्श ऐसा कि छूते ही लहु टपके
है इतना दुःख कि पलभर आँखें न झपके॥
दुर्गन्ध के मारे सिर फट फट है जाये॥ ४३॥

ईक्ष्वादि वत् यंत्रों में पीलते उनको
छिन्न भिन्न कर देते उनके तन को।
पारे की तरह वे बिखर पुनः मिल जाते
यों नारक वेदना नरक लोक में पाते॥
ज्वाला में महिष ज्यों उनको वहाँ जलाये॥ ४४॥

हिंसक मर यदि तिर्यंच गति में जाये
हिंसा का फल वहाँ पर भी कटुक ही पाये।
मानव भी बने तो आहों में पल बीतें
वे निर्धन अनाथ बन दुखमय जीवन जीते॥
अतः अहिंसा का ही पथ अपनाये॥ ४५ ॥

भला इसी में पथ हिंसा का छोड़े
फूलों का मार्ग अहिंसा निर्भय दौड़े।
शुभकर अहिंसा सबको सुखी बनाती
वह भाव दया का सबके प्रति जगाती॥
पूर्ण अहिंसा मुक्ति तक ले जाये॥ ४६ ॥

क्या है अहिंसा ? सबके प्राण बचाना
मैत्री व करुणा भाव हृदय में लाना।
प्रमोद भावना, मध्यस्थ वृत्ति अपनाना
अन्तर के चमन को इनसे है महकाना॥
प्राणातिपात से बचना यह सिखाये॥ ४७ ॥

नहीं शत्रु है कोई अपना कहे अहिंसा
रखिए मित्रता सबसे कहे अहिंसा।
असली शत्रु तो राग-द्वेष ही होते
जो बीज दुःखों का अन्तर-भू में बोते॥
सुख के चमन में ये ही आग लगाये॥ ४८ ॥

संकट से ग्रसित या दीन, हीन हो, दुःखित
उन्हें देखकर हृदय हो जाये विगलित।
देख गुणीजन मुदित हो सिर झुक जाए
मध्यस्थ रहें प्रतिकूल कोई बन आए॥
ये रूप अहिंसा के मन - सुमन खिलाये॥ ४९ ॥

प्रभु ने वाणी को अब विराम दिया है
करबद्ध सभी ने जय जय घोष किया है।
कर चरण स्पर्श प्रभु के हर्षित सब प्राणी
है वीतराग वाणी सचमुच कल्याणी॥
कर कर वन्दन सब लौट वहाँ से जाये॥ ५०॥

सुभद्रा का भी दोहद सहज फला है
दर्शन कर प्रभु के अन्तर बाग खिला है।
अब सेठ-सेठानी अपने घर चल आये
धर्म भावना दिन-दिन बढती जाये॥
सेठ पत्नी को धर्म - मर्म समझाये॥ ५१॥

खिला पिला जिस तन की सुरक्षा करते
जिस धन के लिए हम निशदिन खपते मरते।
जिस कुटुम्ब के मोह में बनते हम दीवाने
सब धरे रहेंगे साथ एक नहीं आने॥
यह धर्म ही इह भव, परभव साथ निभाये॥ ५२॥

सेठ - सेठानी करते ऐसी चर्चा
हो धर्म जीवन में यही प्रभु की अर्चा।
अगर धर्म नहीं फिर क्या वह है अर्चन ?
हो शुभतम मन, वच, कर्म यही है पूजन॥
गर्भ सेठानी का भी पलता जाये॥ ५३॥

जिस दिन की प्रतीक्षा थी वह दिन भी आया
सुभद्रा ने तो पुत्र रत्न है पाया।
दासी ने आ श्रेष्ठी को खबर सुनाई
ले कंठहार दासी ने पाई विदाई॥
जो सुने वही वहाँ देने बधाई आये॥ ५४॥

चहक उठा अब हर्ष श्रेष्ठी के घर में
खुशियाँ लहराई सेठानी के उर में।
बज उठी शहनाई तत्क्षण ही आंगन में
फला श्रेष्ठी का धर्म चर्चा जन - जन में॥
जन मानस तो निज-निज चिन्तन मन लाये॥ ५५॥

जन्मोत्सव की करे श्रेष्ठी तैयारी
नृप के संग आये नगरी के नर नारी।
सबकी बधाई श्रेष्ठी ने स्वीकारी
पुत्र खुशी में भोज दिया है भारी॥
मिष्ठान्न भोज में नाना वहाँ बनाये॥ ५६॥

आनन्द भोज का आज अनूठा आया
सबने ही सराहा खूब मौज से खाया।
क्या ही व्यवस्था, कहा न मुख से जाये
स्वयं श्रेष्ठी हाथों से खुश हो खिलाये॥
व्यवहार श्रेष्ठी का सबके ही मन भाये॥ ५७॥

आशीर्वाद नगर का शिशु वह पाये
आशा से अधिक पा याचक सब हरसाये।
संस्थाओं को श्रेष्ठी ने दान दिया है
सबने जन्मोत्सव का आनन्द लिया है॥
जो कमी एक थी वह पूरी हो जाये॥ ५८॥





पंचम – पटल

परिणय

दोहे

मानव संस्कृति को मिले, जो जग में संस्कार।
शास्त्रों में उल्लेख है, सोलह यहाँ प्रकार॥

नामकरण भी एक है, सबका होता नाम।
कहीं किसी भी क्षेत्र में, चले न इस बिन काम॥

भारत के इतिहास का, खोल देखिए पृष्ठ।
नाम एक से एक सब, मिल जाए उत्कृष्ट॥

हवा विदेशी जब चली, तब से है यह हाल।
नाम निरर्थक हो गए, बदली जग की चाल॥

संस्कृति पर हमला हुआ, उसका पड़ा प्रभाव।
इस कारण ही कूल पर, डूब रही है नाव॥

कैसे, कैसे नाम हैं, समझ नहीं कुछ आय।
हँसी उभरती सुन यहाँ, दे जो नाम बताय॥

टिंकू, पिंकू, बबल है, डब्बू, गोलू, जोन।
रिंकू, गोल्डी, मोन्टू व पप्पी, कुप्पी, डोन॥

बिन्टू, पिन्टू, डोल है, चिन्टू डिम्पू नाम।
सिम्पू, सिम्मी, सोनिया, रखे नगर क्या ग्राम॥

'कमल प्रभा' कहना बहुत, पर दूं यहीं विराम।
संस्कृति के अनुरूप ही, रखिए भाई नाम।।

लौट चले फिर से यहाँ, उसी कथा की ओर।
हमें लक्ष्य तक पहुँचना, थाम कथा का छोर॥

पूर्ववत्

नाम रखा गुणाचन्द्र शिशु का प्यारा
शिशु क्या था मानो पूर्ण-शशि उजियारा।
गुणी गुणी कह, तात उसे बतलाते
दास दासी भी हरपल लाड़ लड़ाते॥
सुभद्रा सुत को देख देख हरसाये॥ १॥

पुण्यवान व्यक्तित्व महल में आते
चांदी का चम्मच दबा दाँत में लाते।
पाँच धाय मिल पालन सुत का करती
आगे से आगे लिए गोद वे फिरती॥
दूज चन्द्र सम बढ़ता वह तो जाये॥ २॥

तीन वर्ष पश्चात् सुता भी पाई
सुनन्दा उसका नाम रखा सुखदाई।
रूप रंभा सा उसने अनुपम पाया
मणीचन्द्र भी देख सुता हरसाया॥
लालन-पालन में कमी नहीं रह पाये॥ ३॥

पुत्र-पुत्री में भेद श्रेष्ठी नहीं करता
जो करे भेद तो समझो बुद्धि जरता।
एक खून से बने बहन और भाई
क्यों भेदभाव की पड़े हृदय परछाई॥
पर इस बुराई से बच कोई ही पाये॥ ४॥

पुत्र हुआ सोने में मिला सुहागा
सब कहेंगे भाई भाग्य तेरा तो जागा।
खुशी में उस घर तत्क्षण बजे शहनाई
आ आकर लोग भी देंगे खूब बधाई॥
यदि प्रथम पुत्री हुई उतर चेहरा तो जाये॥ ५॥

इस भेदभाव से ग्रस्त आज युग सारा
कर भ्रूण परीक्षण बना मनुज हत्यारा।
सिर्फ पुरुष का दोष नहीं मैं मानूं
नारी भी पूरी दोषी सत्य यह जानूं॥
प्रथम पुत्र हो वह यही आश लगाये॥ ६॥

जग सोचे सुत बिन व्यर्थ है जीवन सारा
वार्धक्य आने पर होता वही सहारा।
बेटी तो पराया धन जग में कहलाये
जाना है अन्य घर फिर क्यों आश लगाये॥
यह चिन्तन सचमुच समुचित नहीं कहाये॥ ७॥

खैर अधिक नहीं इस पर लिखना चाहूँ
विस्तार बढ़े नहीं, मूल बात पर आऊं।
पले प्रेम से दोनों बच्चे घर में
नहीं भेद तनिक भी सेठ सेठानी उर में॥
मात - तात का प्यार दोनों ही पाये॥ ८॥

अष्ट वर्ष होने पर शाला जाये
गुरु जी भी उनको प्रेम से ज्ञान सिखाये।
विनय भाव रख ले रहे गुरु से शिक्षा
सफल होते सब में, जब होती परीक्षा॥
कला बहत्तर, चौंसठ ही वे पाये॥ ९॥

पढ़ लिख करके जब पाई दक्षता उनने
योग्य देख सोचा श्रेष्ठी के मन ने।
उपहार गुरु को दूं क्या ये उपकारी
मेरे बच्चों का जीवन दिया संवारी॥
क्या कभी ज्ञान का मूल्यांकन हो पाये॥ १०॥

मणि, माणक, मोती, रत्न थाल सजाया
ले करके साथ वह गुरु चरणों में आया।
गुणचन्द्र, सुभद्रा दोनों तात के संग हैं
हो गया पूर्ण शिक्षण यह मन में उमंग है॥
आकर तीनों गुरु चरणों शीश झुकाये॥ ११॥

सेठ कहे यह भेंट गुरु ! स्वीकारें
इस तुच्छ भेंट को आप न देव नकारें।
और भी हो कोई सेवा तो फरमाए
संकोच त्याग कर आप मुझे बतलाये॥
श्रेष्ठी बात सुन उपाध्याय मुस्काये॥ १२॥

अहो श्रेष्ठीवर ! हमको धन नहीं प्यारा
सद्शिष्य ही होता धन तो प्रिय हमारा।
हर आवश्यकता नृपति करता पूरी
यह उनको दे दो जिनके लिए जरूरी॥
हैं कई नगर में बैठे कर फैलाये॥ १३॥

जब काम होगा कह दूंगा आपको आके
ले जायें अभी तो बोले गुरु हरसा के।
आह कैसा युग ? कैसे नर ? जीवन आला
नहीं जरा भी लालच से मन काला॥
आज शिक्षकों की क्या दशा सुनाये॥ १४॥

धन लालच में रोग ट्यूशन का पाला
सरकार देती भरपूर न फिर भी ताला।
शिक्षण के नाम पर घर पर उन्हें बुलाते
विद्या को बेच छात्रों को वहाँ पढ़ाते॥
गुरु होकर भी गुरुता का मान घटाये॥ १५॥

सोचे श्रेष्ठी वह धन लेकर मैं आया
पर उपाध्याय जी ने उसको लौटाया।
है नियम देने हित जो भी राशि निकालूं
ना कभी पुनः तिजोरी में मैं डालू॥
अतः श्रेष्ठी अन्यत्र उसे लगाये॥ १६॥

सुख शान्ति पूर्वक समय निकलता जाए
तरुणाई तन में, यौवन आभा छाए।
चमक दमक चेहरे की बनी निराली
हुई मुखर वासना मन ही मन में काली॥
सम्बन्ध चर्चा ले लोग वहाँ अब आये॥ १७॥

योग्य देख सुत लोग श्रेष्ठी घर आते
आकर के अपने मन का भाव सुनाते।
स्नेह सहित सब सुने श्रेष्ठी वे बातें
बने हमारा काम यह आश लगाते॥
पूछताछ कर सेठ भी पता लगाये॥ १८॥

सोचे श्रेष्ठी, सुत जैसी कन्या पाऊं
उसको ही अपने घर की बहू बनाऊं।
असली धन तो सुकन्या को ही जानो
मत ललचाओ तुम धन पर हे दीवानो !
कन्या सुशीला हो धन ही धन आए॥ १९॥

संस्कारवती, सुगुणा कन्या घर आये
सुख स्वर्गों का सा उतर धरा पर जाये।
विनयहीन, ना समझ अगर हो बाला
सुख शान्ति ऊपर लग जाता है ताला॥
घर सारा ही तब नरक यहाँ बन जाये॥ २०॥

सेठ सोचता कमी न धन की घर में
सुकृत हित लक्ष्मी रहती हरदम कर में।
धन नहीं मुझे तो मात्र चाहिए कन्या
हो अहं, क्रोध, छल आदि से जो शून्या॥
आ धर्म ध्यान में वह सहयोग दिलाये॥ २१॥

जो जो भी ले सम्बन्ध सेठ घर आए
सम्मान सहित वे विदा वहाँ से पाए।
बस एक ही धुन अच्छी कन्या मैं लाऊं
धन, वैभव पर मैं किंचित् नहीं लुभाऊं॥
पुरुषार्थ जगे तो जीवन - रथ चल पाये॥ २२॥

हर नर चाहता सुकन्या बहू बन आये
ताकि घर में सुख सरिता बहती जाये।
पर चाहने से क्या, रखे भावना कितनी
कर्म किए हैं जैसे वही है मिलनी॥
विपरीत भाग्य तो स्वर्ण मिट्टी बन जाये॥ २३॥

इन्द्र शिखर नगरी से श्रेष्ठी एक आया
सुदत्त नाम उसने अपना बतलाया।
जो चित्रकार ने सुन्दर चित्र बनाया
उसको भी अपने साथ वह तो लाया॥
मणीचन्द्र को चित्र वह दिखलाये॥ २४॥

हाथ जोड़ कर सुदत्त श्रेष्ठी वह बोला
है पुण्यवान सुत आपका मैंने तोला।
अगर पुत्री मम आपके मन भा जाये
तो यही चाहूं मैं उसको बहू बनाये॥
है इच्छा मेरी आप मेरे घर आये॥ २५॥

मणीचन्द्र ने भोजन उन्हें कराया
फिर विदा उन्हें दे भाव हृदय यह लाया।
है कन्या कैसी जाकर देखूं पहले
मुझे चाहिए वह जो हर स्थिति सहले॥
पर चाहने से क्या आना वही तो आये॥ २६॥

हर घर चाहता है बहू सुपात्र आए
अमन चैन ताकि घर में मुस्काए।
यदि फूहड़ हो बहू वाक् युद्ध नित ठनता
बात बात में घर पानीपत बनता॥
अतः प्राथमिकता कन्या ही पाये॥ २७॥

शुभ समय देख मणीचन्द्र परिजन संग में
चला देखने मन में नई उमंग ले।
जब मणीचन्द्र जी पहुँचे सुदत्त के घर पे
वह कहे भाग्य मम आये आप मुझ दर पे॥
उच्चासन पर सम्मान सहित बिठलाये॥ २८॥

कुछ क्षण तो चली थी इधर उधर की बातें
फिर मूल बात पर वे सब ही हैं आते।
इतने में सेवक थाल सजाकर लाये
मेवा, फल व मिष्टान्न से सजे सजाये॥
नमकीन, झारीजल, दुग्ध पात्र भी आये॥ २९॥

कर करके वे मनुहार खिलाए पिलाए
सम्मान, स्नेह का रस अद्‌भुत ही आए।
भावों की मधुरता भोजन में रस लाती
कदली फल के छिलकों की कथा बताती॥
विदुर पत्नी प्रसंग ध्यान में लाये॥ ३०॥

इतने में आ विजया ने शीश नमाया
चरण छू के आशीष सभी का पाया।
चमक दमक रंग रूप सभी ने देखा
कुछ देख रहे हैं भव्य भाल की रेखा॥
अन्तर में कैसा कौन, नजर नहीं आये॥ ३१॥

घर बार, ठिकाना कैसा ? देखा जाता
रूप रंग आकर्षण भाव जगाता।
अन्तर का रंग है कैसा देख नहीं पाते
जो लिखा भाग्य में वैसे साथी आते॥
कर्म किए जो वे ही रंग दिखाये॥ ३२॥

सुदत्त सेठ कहे स्नेह आपका पाऊं
आदेश देंगे वैसा ही ब्याह रचाऊं।
कमी रखूं ना मेरी ओर से कोई
हो आज्ञा जैसी काम करूंगा वोही॥
मेरी बात पर ध्यान आप दिलवाये॥ ३३॥

मणीचन्द्र कहे और बात नहीं सुनना
है लक्ष्य एक बस कन्या ही है चुनना।
व्यर्थ आडम्बर लगता मुझको थोथा
धन, दिमाग,श्रम इसमें है व्यक्ति खोता॥
ऐसी बातें मुझे न आप सुनाये॥ ३४॥

दुल्हन है सच्चा दहेज वही बस पाऊं
कन्या हो सुशिक्षित और नहीं कुछ चाहूँ।
ऊपर से नहीं मैं कहता अन्तर्मन से
दहेज लोभी की भूख न बुझती धन से॥
जन नहीं उसको तो धन का स्त्रोत लुभाये॥ ३५॥

अहो श्रेष्ठिवर ! पितृधर्म कुछ बनता
हेज सहित दहेज देती रही जनता।
मांग रहे नहीं आप यह क्या कम है?
आप जैसों से गौरवशाली हम हैं॥
हम प्रेम सहित दे वह न आप ठुकराये॥ ३६॥

कौन पिता क्षमतानुसार नहीं देता
है मूढ वह जो मांग-मांग कर लेता।
यह भूख दहेज की घर में आग लगाती
हरित भरित जीवन को नरक बनाती॥
भिखारी मांगने वाला तो कहलाये॥ ३७॥

कर्मों का योग था कन्या ने मन खींचा
खींचा क्या उसने मनोभावों को सींचा।
बात - बात में सम्बन्ध तय हो जाये
खुश होकर हीरक हार श्रेष्ठी पहनाये॥
बना काम बस सेठ सुदत्त हरसाये॥ ३८॥

अब ब्याही जी के कुंकुम तिलक लगाया
दे नारिकेल रूपैया उन्हें थमाया।
गुलाबी रंग से गहरा उन्हें रंग डाला
गले लगे तो बढ़ा प्रेम उजियाला॥
अब बजवा करके ढोल विदा करवाये॥ ३९॥

हो विदा वहाँ से मणीचन्द्र घर आया
पत्नी को आकर सारा हाल सुनाया।
खुश हो के सुभद्रा बोली सुनिए प्रियवर !
अब इस घर हेतु ढूंढो जंवाई सुन्दर॥
हो सुशील, गुणधर सबके मन जो भाये॥ ४०॥

देख रखा है, कहो तो बात चलाये
वसुपत श्रेष्ठी सुत मेरे मन भाये।
हर दृष्टि से वह योग्य नजर है आये
उनके घर जाए कन्या सुख ही पाये॥
लक्ष्मी उन पर कृपा दृष्टि बरसाये॥ ४१॥

क्यों अब तक स्वामी मुझको नहीं बताया
था ध्यान में तो फिर काहे मुझसे छिपाया।
मन मान गया फिर और देखना क्या है
हो वर, घर अच्छा और चाहिए क्या है॥
करें देर नहीं जल्दी बात चलाये॥ ४२॥

परिजन अगले दिन श्रेष्ठी ने बुलवाये
अपना मानस उन सबको वहाँ बताये।
कहा एक ने देर न आप लगाये
कहीं कर से यह सम्बन्ध चला नहीं जाये॥
आज ही चल कर अपना काम बनाये॥ ४३॥

उसी समय मणीचन्द्र संग हुए सारे
वे प्रसन्न मन से आये वसुपत द्वारे।
देख उन्हें वसुपत ने विस्मय कीना
पर पहले स्वागत कर आसन है दीना॥
नगर श्रेष्ठी क्यों मेरे दर पर आये॥ ४४॥

फरमाए हुक्म क्या वसुपत प्रेम से बोला
बोला क्या अन्तर श्रेष्ठी का है टटोला।
मणीचन्द्र - परिजन ने बात चलाई
जो लेकर आये लक्ष्य दिया बतलाई॥
सुनकर वसुपत के नयन वहाँ झुक जाये॥ ४५॥

वसुपत बोला परिजन अभी बुलाऊं
उनका क्या निर्णय वह मैं तुरत बताऊं।
सोच रहा वसु मन ही मन में अपने
नगर सेठ हो श्वसुर और ही सपने॥
वह भेज सेवक को परिजन वहीं बुलाये॥ ४६॥

संकेत होने की देर त्वरित चल आए
क्यों नहीं आए व्यवहार अगर मन भाए।
स्नेह रखें सबसे तो स्नेह ही पाए
अरु कटे रहे तो कटते ही नित जाए॥
अतः प्रेम ही सबके प्रति दरसाये॥ ४७॥

नगर सेठ को देख सभी हरसाए
सम्बन्ध सुता का करने को ये आए।
प्रसन्न हुए सकल परिजन जब यह जाना
है मणीचन्द्र का बहुत यशस्वी ठिकाना॥
महक तो इनकी चारों ओर फैलाये॥ ४८॥

मनुहार सहित अब भोजन उन्हें कराया
सम्बन्ध हमें स्वीकार यह बतलाया।
पण्डित को बुलाकर तिथि भी तय कर डाली
वह श्रेष्ठी चला मन में लेकर उजियाली॥
तीनों घरों में उमड़ खुशी है जाये॥ ४९॥

शुभ मुहूर्त में श्रेष्ठी ने ब्याह रचाया
बज उठे खुशी के वाद्य नगर हरसाया।
मंगलमय गीतों की मधुरिम स्वर लहरी
है प्रसन्नता सेठानी के मन गहरी॥
श्रेष्ठीसुत वसुपत दुल्हा बन कर आये॥ ५०॥

दुल्हा को देखने उमड़ी जनता वहाँ पर
थी चमक दमक न्यारी ही वर चेहरे पर।
बाराती पहुँचे भव्य मण्डप के अन्दर
जगमग जल रहे दीप लगे अति सुन्दर॥
देख स्वागत का रूप हृदय हरसाये॥ ५१॥

स्वादिष्ट, मिष्ट भोजन की कथा है न्यारी
खा रहे स्वाद ले ले करके नरनारी।
पाणिग्रहण की विधियां सब हुई पूरी
है धूमधाम इच्छा नहीं रहे अधूरी॥
विदा वेला की घड़ियाँ तो अब आये॥ ५२॥

देख विदाई सजल हुई हैं आँखें
यह उड़े कोयलिया बिना लगाये पाँखें।
सुनन्दा सिसकती पास खड़ी है उनके
मोती पर मोती टपक रहे परिजन के॥
यह मोह दशा जीवों को यों ही रुलाये॥ ५३॥

मणीचन्द्र ने पुत्री को गले लगाया
तुम दो घर की हो शान यह समझाया।
इस घर से अधिक ससुराल स्नेह तुम पाओ
सुसंस्कारों की सौरभ सदा फैलाओ॥
मन सब का जीतना आशा यही लगाये॥ ५४॥

मत तन को पालना, सेवा में रस लेना
जो मिले आज्ञा, सम्मान उसे तुम देना।
प्रतिकूल पति के कभी न बिटिया जाना
जो फर्ज बहू का पूरा उसे निभाना॥
स्वजन सदृश ही स्नेह सेवक जन पाये॥ ५५॥

उपालंभ ना सुने ये कान हमारे
हों इतने व्यवस्थित बेटी ! काम तुम्हारे।
दीन, दुखी, दर्दी कोई द्वार पे आए
हंसता हंसता ही तेरे घर से जाए॥
जीवन का सार यही सबका दुःख मिटाये॥ ५६॥

सबके सोने पर सोना, पहले उठना
व्यवहार हो ऐसा पड़े कभी ना घुटना।
मुस्कान वदन पर बेटी ! हर पल नाचे
जिनवाणी पर ही मन तेरा बस राचे॥
यही आश तेरे से हम तो आज लगाये॥ ५७॥

विनय भाव रख, दूर अहं से रहना
मत भूल वचन कटु कभी किसी से कहना।
कष्ट कोई भी आए तो हँस सहना
रखे रोष जो पड़े उसे नित दहना॥
बिन मतलब घर से पाँव न बाहर जाये॥ ५८॥

घर के काम में जी न चुराना बेटी !
व्रत, नियम, त्याग, तप में भी रहना सेंठी।
मनुज जीवन नहीं बार-बार है मिलता
यह ऐसा कमल जो कभी कभी ही खिलता॥
मिट जाये पर वर्षों तक सौरभ छाये॥ ५९॥

दे शिक्षा पिता ने कहा ध्यान तुम रखना
कर अमल इन्हें जीवन का स्वाद शुभ चखना।
दे विदा पुत्री को सुत बारात सजाई
चल इन्द्र शिखर नगरी में वह तो आई॥
स्वागत में पूरा नगर उमड़ है आये॥ ६०॥

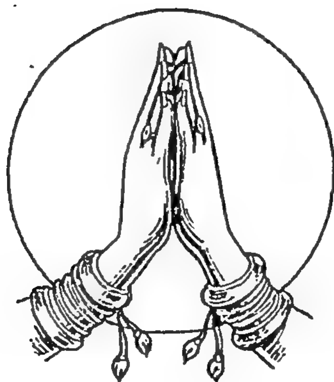
विशाल भवन, मण्डप सुसज्जित जिसमें
थी बड़ी ही सुन्दर, सुखद व्यवस्था उसमें।
बाराती जनों को वहाँ ले जा ठहराया
सम्मान, स्वागत पा मन सबका हरसाया॥
बैठे हों स्वर्ग में ऐसा दृश्य लखाये॥ ६१॥

विजया ने प्रसन्न हो वधू वेश है पहना
कम अंग पड़े ज्यादा ही बन गया गहना।
रमक झमक कर बनड़ी वह तो आई
सजा धजा वर, रौनक वदन सवाई॥
ठाट - बाट से ब्याह वहाँ रचवाये॥ ६२॥

ना दहेज श्रेष्ठी ने कुछ भी उनसे लीना
आदर्श श्रेष्ठ पुरुषों का पेश है कीना।
दहेज पड़ा जो, मानो वह मुस्काया
यह निर्लोभी व्यक्तित्व अजब ही आया॥
ले के विदाई श्रेष्ठी नगर में आये॥ ६३॥

दुल्हन को ले दुल्हा जब घर आया
वधू देख सुभद्रा मन मुस्काया।
स्वर्ग परी सी सुन्दर बहू है आई
देख उसे सब खुश हो देते बधाई॥
वर्षों की साध सेठानी की फल जाये॥ ६४॥

विजया को पूरा प्यार सुभद्रा देती
हो काम कोई भी सलाह वह उससे लेती।
गुणचन्द्र तात का स्नेह सदा ही पाता
आनन्द खुशी के साथ समय है जाता॥
सुबह का सूरज सांझ पड़े ढल जाये॥ ६५॥





षष्ठ – पटल

प्रस्थान

दोहे

समय बीतता जा रहा, ठहर नहीं वह पाय।
जागृत जो होता यहाँ, वो ही लाभ उठाय॥

हाय हाय में लोग सब, देते उम्र बिताय।
रहे दूर सत्संग से, करे नहीं स्वाध्याय॥

अन्तर आँखें खोल कर, करे मोह पर मार।
'कमल प्रभा' उस व्यक्ति का, होता है उद्धार॥

धन में सुख होता अगर, तजते नहीं सुजान।
त्यागे वे ही जगत में, होता जिनको ज्ञान॥

उनका जीवन धन्य है, जलज सरिस जो होय।
रहकर के संसार में, पाप नहीं वे ढोय॥
योग्य देख गुणचन्द्र को, श्रेष्ठी करे विचार।
धर्म साधना मैं करूं, संभला कारोबार॥

पूर्ववत्

एक दिवस श्रेष्ठी शय्या पर सोया
सोया क्या भावी चिन्तन में वह खोया।
नाव किनारा मेरी पाने वाली
जीवन की संध्या भी तो आने वाली॥
घड़ी यह चलती पता न कब रुक जाये॥ १॥

कुछ नहीं भरोसा मृत्यु कब आ जाए
आ गई अगर तो वार न खाली जाए।
अतः साधना करूं छोड़ मोह माया
सार्थक करलूं मैं जो पाई नर काया॥
आत्म शुद्धि जीवन का सार कहाये॥ २॥

चक्कर चौरासी का था काटा अब तक
पड़े काटना, कर्म न क्षय हो जब तक।
अनन्त काल हो गया जनमते, मरते
मरेंगे क्यों नहीं काम ही ऐसा करते॥
पुरुषार्थ करूं कि भ्रमण मेरा मिट जाये॥ ३॥

भार गृहस्थी का सुत को संभलाऊं
मैं धर्म ध्यान में अपना समय बिताऊं।
काम का क्या जीवन भर करते जाओ
पलभर भी चाहे विश्रान्ति नहीं पाओ॥
करते करते अंत एक दिन आये॥ ४॥

आखिर तो इक दिन पड़े मुझे संभलाना
तो क्यों इस पर ललचा समय गंवाना।
जब है संभालने वाला फिर क्यों उलझन
नर जीवन तो यह उलझन की है सुलझन॥
यह सोच श्रेष्ठी गुणचन्द्र को पास बुलाये॥ ५॥

पाकर के बुलावा तात पास वह आया
आ करके उसने पिता को शीश झुकाया।
मन में सोचे गुणचन्द्र काम क्या ऐसा
जो मुझे बुलाया इतनी रात, तम कैसा ?
कर पकड़ सेठ निज सुत को निकट बिठाये॥ ६॥

कर लिए काम सब जो भी करने मुझको
अब करना शेष जो पुत्र बताऊं तुझको।
जन्म-मरण का चक्र अभी भी चालू
मिटे यह जिससे जीवन वैसा बनालूं॥
यह काम इसी जीवन में ही हो पाये॥ ७॥

धन, वैभव सारा कोष संभालो अपना
तप मुझे तो तपना नाम प्रभु का जपना।
आरम्भ सभारम्भ बाधक दुनियादारी
इन सबसे हो अब मेरी दुनिया न्यारी॥
यों मन के भाव मणीचन्द्र उसे समझाये॥ ८॥

घर का काम बहू रानी देखे सारा
व्यवसाय क्षेत्र में है अधिकार तुम्हारा।
चुपचाप सुने गुणचन्द्र न कुछ भी बोले
बोले क्या मन में बात और ही तोले॥
तोले भी क्या, दिन अशुभ श्रेष्ठी के आये॥ ९॥

अब मेरे भरोसे तुम्हें नहीं है रहना
व्यापार शुद्धता से करना यह कहना।
कम तोल माप कर लूट न बेटे ! मचाना
नश्वर माया हित मत ईमान गमाना॥
जो छवि है अपनी कमी न उसमें आये॥ १०॥

इतना कह चाबी दे दी, सब संभलाया
जो रखना था रख लिया न उसको बताया।
ले चाबी हाथ में मणीसुत अति हरसाया
हरसाया क्या कर्मों ने जाल फैलाया॥
कुल देवी वचन वह मिथ्या कैसे जाये॥ ११॥

जग प्रपंचों से नाता श्रेष्ठी ने तोड़ा
विषय वासना से निज मन को मोड़ा।
अध्यात्म-साधना में वह मन को रमाये
स्वाध्याय, ध्यान, जप, तप में समय बिताये॥
अन्तर की सृष्टि का आनन्द और ही आये॥ १२॥

गुणचन्द्र प्रचुर वैभव पाकर पगलाया
विजया का मन भी देख यह हरसाया।
ओह ! इतना धन है आज ही मैंने देखा
कितनी है शुभतर मेरे भाग्य की रेखा॥
वे नाचे-कूदे दोनों खुशी मनाये॥ १३॥

विजया ने पति को अपने वश में कीना
बस काम एक है राग रंग में जीना।
धर्म ध्यान का मार्ग उन्होंने छोड़ा
बस खाना, पीना ध्यान इसी में जोड़ा॥
शनैः शनैः दुर्बुद्धि पंख फैलाये॥ १४॥

गुणाचन्द्र सोचता बैठा बैठा खाऊं
तो न खुटे धन फिर क्यों दौड़ लगाऊं।
खाऊं पीऊं, खुशियाँ, मौज मनाऊं
क्यों भाग दौड़ कर तन को व्यर्थ तपाऊँ॥
नशा जोर का धन का मन पर छाये॥ १५॥

धन का नशा इस जग में बहुत बुरा है
यह अपने आप में लगती एक सुरा है।
द्वार अनर्थों के भी खोलता धन है
इसको पाने हित सदा डोलता मंन है॥
कभी कभी यह नशा नरक ले जाये॥ १६॥

यौवन, धन, प्रभुता, विवेक शून्यता संग में
नीति कहती है रंगे अनर्थ के रंग में।
नशा एक का जीवन नरक बनाता
जब मिले चार तो क्यों ना मन मदमाता ?
नशा नाश का कारण बन कर आये॥ १७॥

राग रंग में समय दोनों का जाता
व्यापार हेतु भी समय निकल नहीं पाता।
मुनीम व नौकर काम काज हैं करते
मौके का लाभ ले अपना घर वे भरते॥
पतवार बिना क्या नाव किनारा पाये॥ १८॥

दुर्व्यसनी युवा कुछ नगर के जो स्वच्छन्दी
आमिष भोजी, मदिरा पायी, विषयानन्दी।
जब देखो जूआ ताश खेलते मिलते
घण्टों ही निकलते स्थान से वे नहीं हिलते॥
उन युवकों की दृष्टि मणीसुत पर जाये॥ १९॥

कभी कोई मिलने के बहाने आता
आता तो अपना रंग दिखाकर जाता।
एक एक कर दिनभर आते रहते
खाओ, पीओ मिले न जीवन कहते।
शनैः शनैः वे असर छोड़ते जाये॥ २०॥

असर संगति का जीवन में आता
जागृत जन ही इससे सचमुच बच पाता।
नहीं तो जैसा संग रंग वैसा ही
मन होता वैसा अन्न मिले जैसा ही॥
यह नीति वचन सुनते ही सदा से आये॥ २१॥

मणीसुत के अब वे दुर्मति मित्र बने हैं
मिष्ट वचन इतने कि शहद सने हैं।
कुमित्रों के चक्कर में वह तो आया
शब्दों का जाल ही ऐसा समझ न पाया॥
पूरी तरह वह चंगुल में फँस जाये॥ २२॥

जब देखो तब वे दुष्ट मित्र आ जाते
जुआ खेल मणीसुत से धन ले जाते।
गुणचन्द्र मित्रों की बात टाल नहीं पाता
क्या कमी है धन की पानी ज्यों वह बहाता॥
अब सुरापान भी मित्र उसे करवाये॥ २३॥

विजया भी पति का पूरा साथ निभाती
आनन्द जीवन का मान, न फूली समाती।
पथ भूले पति, कर्त्तव्य नारी का क्या है ?
वह भूल गई कुल गौरव गरिमा क्या है ?
कुसंगति का प्रभाव पूरा मन छाये॥ २४॥

सेवक हितकांक्षी पास श्रेष्ठी के आया
जो बना हाल घर का वह सर्व बताया।
इक पल श्रेष्ठी विश्वास नहीं कर पाया
पर मानो सत्य हो सोच यह घबराया॥
उठ कर वह सीधा पुत्र कक्ष में आये॥ २५॥

हाल वहाँ का देख श्रेष्ठी चकराया
वह त्वरित मुड़ा वहाँ ठहर नहीं है पाया।
प्रातः होने पर सुत को उसने बुलाया
अरे पुत्र ! यह कैसा रोग लगाया॥
क्यों घर की इज्जत पानी में तू मिलाये॥ २६॥

सद्गुरुओं से सुशिक्षा तू ने पाई
करते ही रहते तेरी लोग बड़ाई।
वे संस्कार कहाँ तेरे पुत्र गए हैं ?
मेरे घर में ये कैसे हाल नए हैं॥
दिनकर घर में भी तमस, समझ नहीं आये॥ २७॥

दृश्य देख कल का मैं सो नहीं पाया
इतना परिवर्तन कैसे तुझ में आया।
गुणचन्द्र पिता के आगे कुछ नहीं बोले
बस मांग क्षमा चल दिया है होले होले॥
शाम होते ही मित्र चले वहाँ आये॥ २८॥

सुरा देख मन वश में नहीं रह पाया
पी अधिक वारुणी मणीसुत तो चिल्लाया।
पिता ने मुझको आज बहुत समझाया
मैं उनके आगे बोल नहीं कुछ पाया॥
नशे में धुत हो तात कक्ष में जाये॥ २९॥

बोले वह अब मैं चुप नहीं रहने वाला
कॅल बोला नहीं पर आज खोलूं मुँह ताला।
कौन हो तुम हम बीच बोलने वाले
है भला इसी में नया ढंग अपनाले॥
मन में जो आये वह बोलता जाये॥ ३०॥

यह नशा नाश की ओर ले जाता नर को
मिल जाती धूल में शान उजाड़े घर को।
लाज, शर्म नहीं किंचित् मन में रहती
क्या डरना दुनिया दुर्व्यसनों की कहती॥
मणीचन्द्र मौन, गुणचन्द्र बोलता जाये॥ ३१॥

दुर्व्यसन सप्त जो कहे गये हैं जग में
हैं बहुत बड़ी वे बाधा सुख के मग में।
आमिष, मदिरा, परनारी, वेश्या प्रीति
है द्यूत, चोरी, शिकार करे फजीती॥
बर्बाद जिंदगी एक यदि लग जाये॥ ३२॥

क्या पाया दुर्व्यसनों को जिसने पाला
दुर्मति बन खोया अन्तर का उजियाला।
घर धुपता, तन धुपता, अपयश है पाता
अब तक का तो इतिहास यही बतलाता॥
पुण्यशाली जो इनसे निज को बचाये॥ ३३॥

कर हिम्मत सास ने विजया को फटकारा
क्या फर्ज पति प्रति सोचो आज तुम्हारा।
मत मर्यादा से बाहर ऐसे जाओ
पथ पतित पति को पथ पर पुनः है लाओ॥
पत्नी वही जो पतन से पति को बचाये॥ ३४॥

बहू बोली हम जैसे जीते, जीने दो
आनन्द का अमृत रस हमको पीने दो।
हम क्या करते हैं ? बातें ये सब छोड़ो
बस धर्म ध्यान में आप तो मन निज जोड़ो॥
क्यों इधर ध्यान दे चिंतित चित्त बनाये॥ ३५॥

मन मार सुभद्रा बैठ जाती बेचारी
क्या कर सकती बहू आगे है लाचारी।
सपने तो उसने और ही कुछ संजोये
पर मिले वही कर्मों ने बीज जो बोये॥
लीला कर्मों की अपरम्पार कहाये॥ ३६॥

सास श्वसुर की सेवा बहू ने छोड़ी
वह बन गई मानो बिन लगाम की घोड़ी।
नित्य सास को उल्टा सीधा सुनाती
ला नयनों में जल पति को रोज भिड़ाती॥
यह मात तुम्हारी मुझको सदा दबाये॥ ३७॥

जब तक यह घर में सुख से नहीं रह पाऊं
मन करता अपने पीहर स्वामी जाऊं।
कांटा बन कर यह पीड़ मुझे पहुँचाती
बात बात में मुझको डांट पिलाती॥
कुछ करना होगा सहन नहीं हो पाये॥ ३८॥

इस भारी रोग का करना हमें निवारण
रह सकते नहीं हम सुख से इनके कारण।
संघर्ष रहेगा जब तक घर में रहेंगे
इन नयनों से तो अश्रु सदा बहेंगे॥
कुछ दवा करो कि रोग यह मिट जाये॥ ३९॥

अब मात-तात से झगड़ा निशदिन होता
गुणहीन बना गुणचन्द्र, पिता मन रोता।
कुल देवी वचन श्रेष्ठी को याद है आए
मन को समझाए फिर भी रहा न जाए॥
अपने दुर्भाग्य पे श्रेष्ठी अश्रु बहाये॥ ४०॥

किचकिच से अब तो मणीचन्द्र घबराया
वह एक दिवस गुणचन्द्र पास में आया।
अभी समय है बेटे ! संभल तुम जाओ
मूरख विजया की बातों में मत आओ॥
यह नारी नहीं नागिन बन विष फैलाये॥ ४१॥

फुफकार उठी वह नागिन मुझे ये कहते
अब समझो मेरे ही बिल में ये रहते।
अब तक तो मैंने नहीं किसी को काटा
हर वार भले ही इनने मुझको डांटा॥
पर वार न खाली अब तो मेरा जाये॥ ४२॥

खा पीकर बैठे रहते हैं ये दिनभर
नहीं काम काज पर टांग अड़ाए आकर।
सुख फूटी आँख से देख न पाते हमारा
बस जब देखो तब चढ़ा ही रहता पारा॥
लगता अजगर बन निगल नहीं ये जाये॥ ४३॥

गुणचन्द्र कहे मत क्रोध मुझे दिलवाओ
जो चाहो भला तो निकल यहाँ से जाओ।
विजया बोली ऐसे नहीं ये जाएंगे
मेरे हाथों से धक्के ये खायेंगे॥
हाथ जोड़ मणीचन्द्र आगे तब आये॥ ४४॥

जो कहा बहू ने धक्के से क्या कम है ?
तुम नहीं यहाँ पर दोषी बेटे ! हम हैं।
अब इस घर से उठ गया है दाना-पानी
ऐसा भी होगा यह तो नहीं थी जानी॥
सुभद्रा टपटप अश्रु खड़ी बहाये॥ ४५॥

विजया बोली देखना इन्हें न चाहूं
जब तक ये घर में खाना मैं नहीं खाऊं।
दान धर्म में धन को ये तो लुटाते
बैठे रहते हैं कौड़ी नहीं कमाते॥
मैं जाऊं या ये इस घर से है जाये॥ ४६॥

बेटी ! ऐसा मत घर में विष तुम घोलो
क्या कहा गलत कुछ जरा तो मन में तोलो।
अरे पुत्र ! तुम खून यहाँ हो मेरा
बोलो मुझसे बढ़ कौन हितैषी तेरा॥
कुछ बोले बिना गुणचन्द्र वहाँ से जाये॥ ४७॥

सेठ-सेठानी सोचे अब क्या करना
मुश्किल है सुख से यहाँ पर अब तो रहना।
आर्तध्यान में समय हमारा जाए
नहीं कुछ भी साधना एकचित्त बन पाए॥
जाएं तो भी कहाँ जाएं समझ न आये॥ ४८॥

आगे पीछे लगता है घर छूटेगा
यह पिता-पुत्र का स्नेह सूत्र टूटेगा।
अच्छी कहो तो भी महाभारत मचता
असभ्यों सा व्यवहार न मुझको रुचता॥
भला इसी में दूर कहीं हम जाये॥ ४९॥

कहे सेठ मैं बहू बना कर लाया
तुम रहो चैन से लो यह घर संभलाया।
तुम क्यों छोड़ो बहू हम ही घर छोड़े
सुत अब भी संभलो कहता हूँ कर जोड़े॥
मत दुखी बनो तुम आज निकल हम जाये॥ ५०॥

सुध समय-समय पर बहन की लेते रहना
नहीं आये हमारी याद तुम्हें यही कहना।
झट बोली विजया घर पर आने न दूंगी
क्या लगती मेरे खबर जो उसकी लूंगी॥
मुझको तो फूटी आँख न वह सुहाये॥ ५१॥

मणीचन्द्र हट गया मौन को धारे
हट गई सुभद्रा अपने मन को मारे।
दुष्टों से बराबरी करें क्या मिलने वाला
है मौन सार यदि पड़े मूर्ख से पाला॥
भान न उसको कब क्या कर दिखलाये॥ ५२॥

जब मानस पर दुर्बुद्धि है छा जाती
फिर अच्छी बुरी की समझ नहीं रह पाती।
यह दुर्मति ही तो घर में जंग मचाती
है भला बुरा क्या इसका भान भुलाती॥
दुर्मति से तो भगवान सदा बचाये॥ ५३॥

यह दुर्मति ही दुर्गति का द्वार है खोले
यह दुर्मति ही कहे विवेक तू तो सोले।
मुस्कान जीवन की भी तो दुर्मति छीने
शान्ति से किसी को नहीं देती यह जीने॥
जहाँ जाये यह कांटे ही कांटे उगाये॥ ५४॥

सोच रहे जाने की सेठ-सेठानी
नहीं रहने में है सार उतर रहा पानी।
संदूक खोल सेठानी गहने निकाले
आँखें उसकी तो टप टप अश्रु डाले॥
इतनें में सुनन्दा चली वहाँ पर आये॥ ५५॥

देखा माँ को लेते उसने सिसकी
पूछा तो सुन कर तन गई भृकुटी उसकी।
वह भ्रात-भाभी के पास त्वरित है आई
बोली वह यह तो उचित नहीं है भाई॥
माँ के नयनों में अश्रु कैसे आये॥ ५६॥

इस घर में कमी क्या जो तुम करो लड़ाई
मेरे तो समझ में बात नहीं कुछ आई।
हिलमिल खा पी कर रहो नहीं क्यों सुख से
क्यों विष उगलो, बरसे अमृत जिस मुख से॥
समझदारी से काम लो बहन सुनाये॥ ५७॥

तुम कौन हमारे बीच बोलने वाली
फुफकार उठी वह विजया नागिन काली।
सुन सुनन्दा तो गिरी कटी ज्यों डाली
मुझे कहा तुम कौन बोलने वाली॥
आघात लगा ऐसा, मूर्च्छित हो जाये॥ ५८॥

जल छिड़का तब मुश्किल से होश है आया
हा ! इस घर का यह हाल न दुःख समाया।
बढ़ी बात इतनी नहीं भेद यह जाना
क्या बीत रही है दर्द आज पहचाना॥
क्यों तात-मात भी मुझ से रहे छिपाये॥ ५९॥

मणीचन्द्र कहे यहाँ पर अब नहीं रहना
रहने का मतलब कष्ट अधिक है सहना।
आज रात को बेटी ! हम जायेंगें
योग बना तो मिल तुमसे पायेंगे॥
वैसे तो मिलन की आश न मुझे दिखाये॥ ६०॥

पूज्य तात ! ऐसा नहीं मुख से बोले
क्या इस लायक है उम्र कि इत उत डोले।
अन्यत्र जाने की कहाँ जरूरत आई
घर खाली एक है रहो आप उस मांई॥
मन में जरा भी ग्लानि आप नहीं लायें॥ ६१॥

धूप-छांव का खेल है जीवन सारा
नहीं नगर त्याग के सिवा बेटी ! है चारा।
वह मात-तात का दर्द जान कर रोई
कैसे समझाए इनको आकर कोई॥
अश्रुधार आँखों से रुक नहीं पाये॥ ६२॥

मत रोओ सुनन्दे होनी होकर रहती
यह जीवन सरिता ऐसे ही है बहती।
कभी उजाला है तो कभी अंधेरा
सुखद पवन तो कभी झंझा ने घेरा॥
सुख - दुख का झूला ऊपर नीचे जाये॥ ६३॥

हार कीमती, आभा दिव्य निराली
बिटिया के हित माता ने लिया निकाली।
वह बोली-भेंट यह अन्तिम रखलो बेटी।
नाम हार का सुन विजया उठ बैठी॥
बिन अवसर कैसी भेंट जरा दरसाये॥ ६४॥

छीन लिया वह हार सास के कर से
लेकर वह दुष्टा मन ही मन में हरसे।
मन मार हटी सेठानी बोली न डर से
जो होना होगा जाओ तुम तो घर से॥
पीहर का द्वार अब तुझको कौन दिखाये॥ ६५॥

अश्रु डालती निकली प्यासी हिरणी
है डूब गई मझधार में मानो तरणी।
काटो तो खून नहीं लेकिन कर क्या सकती
बस पाँव तले की धरती रही खिसकती॥
भारी मन से वह निज घर को है जाये॥ ६६॥

जाने की तैयारी करे सेठ सेठानी
है विचित्र जग में इन कर्मों की कहानी।
कुछ वसन, आभूषण गठरी में है बांधे
जब हुई रात तो चले डाल कर कांधे॥
जाते देख वह विजया सामने आये॥ ६७॥

बढ़कर आगे गठरी को उसने छीना
देखूं इसमें इन्होंने क्या - क्या लीना !
कैसी कर्कशाएं दुनियाँ में होती
सता-सता कर आखिर खुद भी रोती॥
हाँ तो गठरी खोल विजया चिल्लाये॥ ६८॥

घर में ही देखो डाका इन्होंने डाला
चुपके से कीमती मेरा माल निकाला।
अगर देखती नहीं तो क्या ये दिखाते
माल कीमती छिपा आज ले जाते॥
मणीचन्द्र बेचारा बोल नहीं कुछ पाये॥ ६९॥

रात अंधेरी घटा घिरी थी काली
निकल गये वे ले अपने कर खाली।
गुणचन्द्र उन्हें तो रोक नहीं है पाया
कर बंद द्वार को विजया मन हरसाया॥
मन चाहा कर वह फूली नहीं समाये॥ ७०॥

एक रात्रि में ही सब बदली बातें
टूट गये हैं पिता-पुत्र के नाते।
चले जा रहे पथ जिस ओर ले जाता
थी नीचे धरती ऊपर नभ का छाता॥
वनचरों की रह रह कर आवाजें आये॥ ७१॥

जीवन में पहली बार चले हैं पैदल
उथल पुथल भावों में भारी हलचल।
क्यों दूं औरों को दोष कर्म की गति है
तभी तो देखो फिरी पुत्र की मति है॥
पति पत्नी बातें करते, बढ़ते जाये॥ ७२॥

बीहड़ वन में वे होकर निकल रहे हैं
संकट पथ के भी सहज भाव सह रहे हैं।
कांटे, पत्थर चुभ चुभ कर पीड़ा देते
है कितना धैर्य वे मानो परीक्षा लेते॥
सुपात्रदान का अवसर नहीं मिल पाये॥ ७३॥

भूख, प्यास पर कष्ट नहीं वे माने
क्यों माने धर्म का मर्म व्यक्ति जो जाने।
चले जा रहे चिन्तन मन में करते
वन के दृश्य वे मनहर चित्त को हरते॥
विटप तले विश्राम ले रात बिताये॥ ७४॥



सप्तम – पटल

प्रवास

दोहे

क्या से क्या यह हो गया, श्रेष्ठी करे विचार।
निज सुत के कारण हुए, हम दोनों लाचार॥

क्यों मानूं दोषी उसे, है कर्मों का खेल।
इतने ही दिन तक रहा, मेरा उससे मेल॥

अशुभ कर्म मैंने किए, पूर्व जन्म के मांय।
फल उनका इस जन्म में, रहा आज मैं पाय॥

मंजिल मेरी अब कहाँ, अनजानी है राह।
थामेगा यह धर्म ही, मुझ जैसों की बाँह॥

धर्म कभी छोड़ूं नहीं, दुख कितना ही आय।
'कमल प्रभा' डूबा अरुण, कल लूं उसे उगाय॥

पूर्ववत्

चलते चलते दिवस सात हुए उनको
चम्पा के बाग तक आए अष्टम दिन को।
सुमनों की सौरभ बगिया को महकाए
नर-नारी झुण्ड के झुण्ड उधर ही जाए॥
पूछा क्यों इतने लोग नजर यहाँ आये॥ १॥

यह देवरमण उद्यान है संत पधारे
दर्शन, वाणी हित दौड़ रहे ये सारे।
भाई ! यह तुमने अच्छी खबर सुनाई
है सत्संग तो जीवन की पुण्य कमाई॥
चलो सुभद्रे ! हम भी दर्शन पाये॥ २॥

अकस्मात् पा योग हृदय हरसाया
संतों को देख कर उनने शीश झुकाया।
विधि पूर्वक वंदन आकर पास किया है
श्रद्धा से सिर चरणों में झुका दिया है॥
मुनि बोले किधर से अहो श्रेष्ठिवर ! आये॥ ३॥

आँखों से अश्रु टपक पड़े सुन वाणी
क्या छिपा आपसे आप हो गुरुवर ज्ञानी।
अहो श्रेष्ठिवर ! दिल कच्चा न बनाओ
यही तो है संसार नहीं घबराओ॥
मणीचन्द्र जी खुलकर बात बताये॥ ४॥

चकित हुए सुन संत श्रेष्ठी की बातें
ओह ! बन गई काली शुक्ल पक्ष की रातें।
संसार अजब यह कब क्या रूप है लेता
कुसंग लगे तो रंग धर्म धो देता॥
पर्याय नरक का कुसंग यह दिखाये॥ ५॥

जो चाहो सुख जीवन में सच्चा पाना
मत भूल कुसंग के पथ पर कोई जाना।
जो भी चला इस पथ पर उसने खोया
कांटों की सेज पर मानो वह तो सोया॥
कुसंगति से तो चला चैन सब जाये॥ ६॥

जो कुछ भी घटा है खेल कर्म का जानो
पर सदा एक सा रहे न यह भी मानो।
मावस की होती रात भले ही काली
पर उसके पीछे छिपी पूनम उजियाली॥
यह सोच श्रेष्ठीवर! चिन्ता मन नहीं लाये॥ ७॥

आर्तध्यान तज धर्म ध्यान तुम ध्याओ
मत कर्म-भार से निज को भारी बनाओ।
कर्म किए हैं जो वे उदय तो आये
आयेंगे ही फिर क्यों उनसे घबराये॥
है कर्ज पुराना अच्छा कि चुक जाये॥ ८॥

नये श्रावक को देख पास कई आए
परिचय मुनिवर से उनका वे सब पाए।
धर्म निष्ठा श्रेष्ठी की मुनि बताए
हुई देव परीक्षा घटना उन्हें सुनाए॥
मुनि मुख से महिमा सुन वे विस्मय लाये॥ ९॥

कुछ बोले, हमारा भाग्य कि दर्शन पाया
है पथ वह धन्य जो इधर इन्हें है लाया।
कुछ बोले हमारे घर पर आप पधारो
आतिथ्य हमारा श्रावकजी
सुपात्रदान का योग भी

अति आग्रह उनका श्रेष्ठी टाल नहीं पाया
कर वंदन मुनि को आगे कदम बढाया।
सुभद्रा के संग श्रेष्ठी घर पर आए
देख अतिथि परिजन मोद मनाए॥
सम्मान सहित आसन दे उन्हें बिठाये॥ ११॥

संत पधारे श्रेष्ठी भावना भाए
इतने में गोचरी लेने मुनिवर आए।
सुपात्रदान खुश हो मणीचन्द्र ने दीना
कुछ कदम मुनि को पहुँचा पारणा कीना॥
खिला पति को फिर सेठानी खाये॥ १२॥

कुछ दिन श्रेष्ठी ने उस चम्पा में बिताए
नित दर्शन अरु प्रवचन का लाभ उठाए।
मंगल वाणी जिनवर की सुनकर हरसे
वाणी क्या मानो अमृत रस ही बरसे॥
इतना रस कि कुछ कहा नहीं है जाये॥ १३॥

सन्तों ने किया विहार चले वे आगे
जायेंगे उधर ही जिनके भाग्य हैं जागे।
श्रेष्ठी भी चंचल मानस अपना बनाए
हो पास नगर कोई चले वहीं हम जाए॥
कहा श्रावक से तो वह सुन मुस्काये॥ १४॥

कहाँ पधारो, यहीं विराजो, मानो
है घर यह आपका, अन्य न इसको जानो।
नगर यह अनुकूल, प्रेम-सागर है
हर दृष्टि से उत्तम यहाँ के नागर हैं॥
अन्यत्र जाने का मानस नहीं बनाये॥ १५॥

कहे श्रेष्ठी आपका स्नेह भूल नहीं पाऊं
पर सुपात्रदान बिन भोजन नहीं मैं खाऊं।
ऐसी नगरी आप मुझे बतलाएं
जहां संत सती के दर्शन नित ही पाएं॥
सुन बात श्रेष्ठी की समझ श्रावक वह जाये॥ १६॥

पेढाणापुरी है नगरी पास ही सुन्दर
नहीं कमी है कुछ भी उस नगरी के अन्दर।
बढ़ा चढ़ा व्यापार समृद्धिशाली
अठखेली करे वहाँ चहुं ओर खुशहाली॥
व्यापार हेतु नर दूर-दूर से आये॥ १७॥

मैं तो नहीं चाहूं मन जाने का बनाये
पर जाना है तो आप वहीं पर जाए।
देख भावना रथिक तुरत बुलवाया
नहीं चाहते हुए भी उनको उसमें बिठाया॥
हाथ जोड़ मणीचन्द्र जी शीश नमाये॥ १८॥

संकेत पाते ही रथिक ने रथ को बढ़ाया
अब हवा से बातें करते रथ को पाया।
बहुत शीघ्र पेढाणापुरी वे आए
उतर के रथ से श्रेष्ठी उन्हें लौटाए॥
चल करके पैदल दोनों नगर में जाये॥ १९॥

भवन एक अब खाली लिया किराए
वहाँ सेठ सेठानी डेरा नया लगाए।
डेरा क्या केवल दो ही हैं वे प्राणी
है सपना सम संसार गूँज रही वाणी॥
इस परम सत्य को कोई नहीं विसराये॥ २०॥

हार गले का खोल सुभद्रा बोले
शब्दों में मानो मिश्री ही वह घोले।
स्वामी आप किंचित् भी विचार न लाए
इसे बेचकर अपना काम चलाए॥
क्यों व्यर्थ किसी को अपना दर्द जताये॥ २१॥

सुन बात पत्नी की श्रेष्ठी तो खो जाये
पर इसके अलावा और न चारा पाये।
कोई समय था कृपा लक्ष्मी की घर में
घर भी छूटा इक मुद्रा तक नहीं कर में॥
किसे पता था समय ऐसा भी आये॥ २२॥

अमनस्क भाव से हार ले हाट पे आये
वहाँ बैठा था सर्राफ हार दिखलाये।
सर्राफ हार को देख के विस्मय लाये
शंका के बादल उसके मन पर छाये॥
स्वर्णहार के हीरे चमक बढ़ाये॥ २३॥

वह कभी हार तो कभी श्रेष्ठी को देखे
फिर पूछा भाई कहाँ से आये लेके।
कहा श्रेष्ठी ने भाग्य का हूँ बस मारा
किस्मत ने खेला खेल नहीं पर हारा॥
आप नहीं कुछ शंका मन में लाये॥ २४॥

हो करके वह विश्वस्त खुशी मन लाया
एक एक नग गिन कर मूल्य लगाया।
दो लाख सोनैया दे सकता हूँ भाई
इससे तो अधिक दे सकूं न मैं तो पाई॥
हाँ भरी श्रेष्ठी ने रकम उन्हें मिल जाये॥ २५॥

मणीचन्द्र धन लेकर घर चल आया
नये सिरे से घर उसने है बसाया।
बाजार मध्य में पेढी ली है सुन्दर
प्रारंभ किया व्यापार उसी के अन्दर॥
बिन काम किए नहीं पैसा हाथ में आये॥ २६॥

प्रथम दिवस ही जो व्यापार किया है
आशा से अधिक ही उसमें लाभ लिया है।
क्यों न मिलेगा लाभ पुण्य जो लाए
है खेल पुण्य का सुखद सभी बतलाए॥
हो पुण्य शेष तो गये लौट सुख आये॥ २७॥

कुछ ही दिनों में बदल गई सब बातें
वे ही ठाट हैं, वे ही दिन अरु रातें।
नित्य नियम में चूक न होने पाए
और अधिक व्रत पालन में रस लाए॥
नगर मध्य निज सुन्दर भवन बनाये॥ २८॥

दास दासी कई प्रसन्न हो वहाँ रहते
खुशियों के झरने सदा भवन में बहते।
धर्म ध्यान में समय देते वे पूरा
दान क्षेत्र में बने नगर में शूरा॥
भूपति से भी सम्मान श्रेष्ठी वह पाये॥ २९॥

घर पर जो कोई आशा लेकर आते
निराश कदापि उनको नहीं लौटाते।
दान धर्म में तो रस बहुत ही आता
दीन दुखी का दुख न देख वह पाता॥
ज्यों - ज्यों देते त्यों लक्ष्मी बढती जाये॥ ३०॥

एक दाना कितने ही दाने देता
कृषक देखलो कितना भू से लेता।
शालिभद्र इतिहास सामने प्यारा
सुख का जीवन में सदा रहा उजियारा॥
इतना पाया कि श्रेणिक नृप चकराये॥ ३१॥

अतः दान दे दुख दीनों का हरिए
हो लक्ष्मी पास में मत कंजूसी करिए।
संग्रह करने से लक्ष्मी यह घबराती
दाताओं के घर जाने को ललचाती॥
प्रथम मार्ग मुक्ति का दान कहाये॥ ३२॥

हाँ तो श्रेष्ठी का यश नगरी में फैला
सत्कर्मों ने दुख दूर सदा ही धकेला।
सब लोगों से सम्मान श्रेष्ठी तो पाए
क्यों नहीं पाए जो उदारता अपनाए॥
सद्‌गुण व्यक्ति को जग में अमर बनाये॥ ३३॥

एक रात कुल देवी स्वप्न में आई
इस घर में गड़ा धन बात यह बतलाई।
पाकर के उसको नगर सेठ बन जाओ
पहले से ज्यादा धनी यहाँ कहलाओ॥
सुन देवी वचन को मणीचन्द्र मुस्काये॥ ३४॥

बोला श्रेष्ठी - माँ ! धन्य मैं दर्शन पा के
मुझे चेताया समय-समय पर आके।
पर धन औरों का धूल सरिस मैं मानूं
हो भले ही कंचन, रत्न, मैं कंकर जानूं॥
अतः आप माँ ! लालच नहीं जगाये॥ ३५॥

देवी कहे - अहो ! श्रेष्ठी धन यह तुम्हारा
नहीं औरों का, सच मानो वचन हमारा।
यों कह देवी ने बाहर धन को निकाला
झट फैल गया है रत्नों का उजियाला॥
इतना कर देवी अन्तर्धान हो जाये॥ ३६॥

आँख खुली श्रेष्ठी ने धन वहाँ पाया
पर उस राशि पर मन न जरा लुभाया।
उठा के उसको एक तरफ है डाला
स्वर्ण चषक में भले हाला तो हाला।
जन सेवा में उस धन को श्रेष्ठी लगाये॥ ३७॥

धर्म-ध्यान में समय निकलता जाता
यदा कदा सुत याद उन्हें आ जाता।
सद्बुद्धि प्रभो ! उसमें फिर से है आए
जो मिला यह नर तन उसका लाभ उठाए।
कुसंगति सचमुच जीवन धूल मिलाये॥ ३८॥





अष्टम – पटल

प्रभंजन

दोहे

कुसंग से बचिये सदा, अगर लगे दुख पाय।
बूंद एक ही अम्ल की, गिरे दूध फट जाय॥

मान घटे, दुनियाँ हँसे, कुसंग करे विनाश।
'कमल प्रभा' मन का सभी, छिन जाये उल्लास॥

जंग लगे यदि लोह को, निर्बल उसे बनाय।
कुसंग से सद्बुद्धि त्यों, व्यक्ति खोता जाय॥

'कमल प्रभा' कुसंग बुरा, बिगड़े दोनों लोक।
इज्जत मिट्टी में मिले, सद्गति को दे रोक॥

कालकूट से भी अधिक, कष्ट दायक कुसंग।
अतः बचो इस जहर से, अमृत है सत्संग॥

पूर्ववत्

अब चलो उधर गुणचन्द्र का हाल सुनाये
बिन अंकुश का वह तो हाथी बन जाये।
मात-तात गये इसका कुछ नहीं गम है
होवे भी कैसे फैला भारी तम है॥
विजया तो ताली दे दे हर्ष मनाये॥ १॥

अब घर में नहीं है कोई कहने वाला
कुमित्रों ने तो डेरा वहीं पर डाला।
गुणचन्द्र गेह पर लगा रहे नित मेला
विजया ने भी तो उनको नहीं धकेला॥
गुड़ मिले खाने को क्यों न चींटियाँ आये॥ २॥

रात-रात भर जुआ वहाँ वे खेले
गुणचन्द्र गुरु और शेष बने हैं चेले।
मौज़-शौक़ में धन को नित्य उड़ाता
गणिकाएं बुलाकर घर में नाच नचाता॥
कीचड़ में धंसे तो सहज निकल नहीं पाये॥ ३॥

विजया कहती प्रियतम ! ओ प्रिय ! मेरे
अब नहीं है चिन्ता अपने ही तो डेरे।
जो काँटे थे वे निकल गये हैं घर से
खुशी का निर्झर फूट पड़ा है उर से॥
खाये, पीये, नाचे, खुशी मनाये॥ ४॥

सास-श्वसुर को हटा हर्ष हुआ मन में
है यही तो अन्तर दुर्जन और सज्जन में।
सुखी देख खुश होता सज्जन हरपल
यदि देखे दुर्जन मच जाती मन हलचल॥
हो जैसी समझ वैसी ही बात मन आये॥ ५॥

हाँ तो कुसंग के ज्वर ने पाँव फैलाया
मदिरा ने भी तो अपना जाल बिछाया।
निशदिन ही घर पर महफिल जमती भारी
है फैल गई कुसंगति बन महामारी॥
भ्रान्तबुद्धि हो विजया अति हरसाये॥ ६॥

धीरे - धीरे बात नगर में फैली
गुणचन्द्र ने चादर करदी अपनी मैली।
नगर सेठ बन तात ने नाम कमाया
कुसंगति में पड़ इसने वह गमाय॥
यह मण्डली हुड़दंग पूरी रात मचाये॥ ७॥

मौहल्ले के लोगों ने मिलकर डांटा
कुछ को पीटा, कुछ को मारा है चांटा।
उचित न होगा भूल इधर यदि आए
सच सही सलामत नहीं यहाँ से जाए॥
दुम दबा के भागे, मित्र ठहर नहीं पाये॥ ८॥

गुणचन्द्र सोचता मित्र तो अब नहीं आए
आए भी कैसे मार के उन्हें भगाए।
कोई बात नहीं, मैं ही उन घर जाऊं
यहाँ नहीं आनन्द वहीं जा पाऊं॥
मित्रों के बिना तो चैन नहीं मिल पाये॥ ९॥

गुणचन्द्र प्रातः उठ मित्रों के घर जाए
वे बोले भाई यहाँ कभी नहीं आए।
तात-मात से भय लगता है भारी
संकेत मात्र में समझो बात हमारी॥
वह सभी मित्रों से उत्तर एक ही पाये॥ १०॥

कामसेना गणिका है अतिशय सुन्दर
है बहुत जगह उसके तो भवन के अन्दर।
बोला एक, हम डेरा वहीं लगाए
विश्वास मुझे नहीं रोक वहाँ कोई पाए॥
यह बात मणीसुत के मन को तो भाये॥ ११॥

बन ठन कर निकला जाने को वह घर से
मन ही मन में गुणचन्द्र वह अति हरसे।
सुन्दर थी वैसे भी मणीसुत की काया
पहना सुन्दर वेश इत्र छिड़काया॥
गणिका भवन में सज-धज वह तो जाये॥ १२॥

है नगर श्रेष्ठी सुत गणिका ने जब जाना
हरसाई वह तो आया धन का खजाना।
मधुर वचन कह इसका मन लुभाऊं
धन संपदा इसकी अपनी सभी बनाऊं॥
नयनों से वह तो उस पर तीर चलाये॥ १३॥

गणिका को देखकर रूप का जादू छाया
ओह ! कैसी अद्भुत सुरसुन्दरी सी काया।
सौन्दर्य स्वर्ग का लगे धरा पर आया
कान्तिमान आभा ने चित्त लुभाया॥
उस मनहर छवि पर मुग्ध वह हो जाये॥ १४॥

शुक्तिज से दशन हैं, शुक चंचु सी नासा
है भव्य भाल का आकर्षण आशा सा।
गौर वर्ण पर छिटके रूप निराला
कज्जल सदृश है केशपाश वह काला॥
अंगों की अरुणता मन को बहुत लुभाये॥ १५॥

अहो ! श्रेष्ठीसुत ! पास मेरे तुम आओ
यह दासी आपकी इसे आप अपनाओ।
घोल मिश्री वाणी में उसे रिझाया
बगुली ने अपने जाल में उसे फँसाया॥
वह मोहित उसकी बातें सुन हो जाये॥ १६॥

खुश होकर हीरक हार उसे पहनाया
उस मोहनी सूरत को नयनों में बसाया।
मन करता इसको छोड़ नहीं घर जाऊं
कहाँ ऐसी छवि विजया में मैं वहाँ पाऊं॥
पूरी तरह मणीसुत उसमें खो जाये।। १७॥

धन के भर-भर कर लाता वह तो थैले
वेश्या के संग में नित्य जुआ वहाँ खेले।
सोने की मुर्गी आई मेरे घर में
यों हर्ष उछाले लेता वेश्या उर में॥
अब रातें भी गुणचन्द्र वहीं बिताये॥ १८॥

प्रातः होने पर मणीसुत घर पर आता
मदहोश बना आ शय्या पर पड़ जाता।
प्यार से पति को विजया वह समझाती
पर समझे कैसे बुझी ज्ञान की वाती॥
सुने न उसकी धन वह तो ले जाये॥ १९॥

गणिका भवन में प्रायः समय गुजारे
कुछ बोले विजया तो उसको फटकारे।
धन छिपा-छिपा ले जाये अपने घर से
पर विजया बोले नहीं डांट के डर से॥
पति निकला हाथ से सोच वह पछताये॥ २०॥

क्या सोचा था, क्या जीवन में है पाया
मैं फँसी जाल में जो मैंने फैलाया।
ऐसा भी होगा नहीं मैंने तो जाना
यौवन में बह कर समय नहीं पहचाना॥
वह बैठी-बैठी अश्रु वहाँ बहाये॥ २१॥

आज नगर में कोई नहीं है मेरा
कैसी विपदा ने आकर मुझको घेरा।
विजया होकर भी आज हाय मैं हारी
मैंने ही पाली बढ़ आगे यह बिमारी॥
रात रात नयनों में नींद नहीं आये॥ २२॥

वे धन वैभव के कोष हो गये खाली
दुर्दिन की घर पर पड़ी है छाया काली।
दास दासी भी छोड़ भवन को जाते
जो गये वे आकर मुख भी नहीं दिखाते।
उस पूरे भवन में नजर न कोई आये॥ २३॥

धन रोज जा रहा चिन्ता मन में छाई
सोचे विजया जो बचा उसे लूं बचाई।
सब चला गया तो खाने किसके जाऊं
नहीं कोई भी तो मेरा किसे सुनाऊं॥
कुछ मूल्यवान चीजों को वह छिपाये॥ २४॥

सोचे विजया गड्ढा मैंने ही खोदा
हो बीज वैसा ही तो पनपेगा पौधा।
मर्यादाएं मैने सारी ही तोड़ी
बन गई मानो मैं बिन वल्गा की घोड़ी॥
दुष्कर्म मेरे ही आज मुझे ये खाये॥ २५॥

सास-श्वसुर का मैंने हृदय दुखाया
गृह मालिक थे जो बेघर उन्हें बनाया।
पता नहीं क्या बीती होगी उन पर
मैं जान रही हूँ बीत रही जो मुझ पर॥
जब बीते स्वयं पर तभी ज्ञान है आये॥ २६॥

अपकर्म मेरे तो उदय इसी भव आए
मेरे ही देखो मुँह ना मुझे दिखाए।
सच, बुरे का जग में सगा न कोई होता
कुपथ पर चलने वाला आखिर रोता॥
अतः बचो कुपथ से ज्ञानी चेताये॥ २७॥

धंधा भी चौपट कभी न जाकर देखा
क्यों रखे ध्यान कोई मालिक ले नहीं लेखा।
समय-समय का सब ही लाभ उठाते
मन डिगे न सत से विरला नजर है आते॥
संसार ऐसा ही, विस्मय नहीं मन लाये॥ २८॥

मणीसुत को घर में दिखे नहीं कहीं पैसा
दुर्व्यसन के कारण हाल बना है ऐसा।
ये व्यसन धनी को निर्धन जग में बनाए
यश, ख्याति, प्रतिष्ठा सबको धूल मिलाए॥
मत फँसो दीवानो ! जिनवाणी समझाये॥ २९॥

द्यूतक्रीड़ा, परदारा गमन हो चाहे
हो अथवा मदिरापान बुरी ये राहें।
एक भी व्यसन लगे जीवन में कोई
धन लुट जाता इज्जत देता नर खोई॥
बचो-बचो यह विष दुर्व्यसन कहाये॥ ३०॥

घर क्या बिकते देखे कपड़े-गहने
दर-दर की ठोकर कष्ट पड़े कई सहने।
व्यसनी के घरों का हाल देखिये जाकर
निर्धनता बैठी मिले पाँव फैलाकर॥
व्यसन विपत्ति का पर्याय कहाये॥ ३१॥

इधर - उधर विजया ने धन को छिपाया
गुणचन्द्र ने देखा खाली कोष है पाया।
कितना ही धन हो निशदिन अगर उड़ाये
निर्धन होने में समय नहीं लग पाये॥
मांगे पत्नी से मना वह कर जाये॥ ३२॥

ठहर ऐसे नहीं देगी अभी बताता
हाथ, लात से पीटे, लकड़ी उठाता।
मार के भय से घबरा धन वह बताए
बस नियम रोज का मारकूट ले जाए॥
आखिर इसका भी अन्त एक दिन आये॥ ३३॥

इधर कहे गणिका प्रिय ! घर तुम जाओ
पत्नी के गहने ला मुझको पहनाओ।
गुणचन्द्र कहे मैं ले आया सब रानी
अब उस घर में तो नहीं है कौड़ी कानी॥
शनैः शनैः सब धन मेरा यहाँ आये॥ ३४॥

गुणचन्द्र सुनो दुनियाँ के लोग क्या कहते
गणिका के भवन में नहीं भिखारी रहते।
धनहीन लोगों को यहाँ पर स्थान नहीं है
धन से ही प्रीति हमको सदा रही है।
यदि नहीं देने को अपने घर पर जाये॥ ३५॥

मैने तुमसे कितना प्यार किया है
धन था जितना भी लाकर सर्व दिया है।
मत मुझको अपने घर से निकालो प्यारी !
मेरे तो दिल पर सुनकर बहे कटारी॥
तेरे बिना तो रहा न मुझसे जाये॥ ३६॥

मैं धन लेकर तन देती उसके बदले
चल उठ यहाँ से त्वरित अरे ओ कंगले !
नहीं एक तेरी यहाँ कोई सुनने वाला
धन हीनों के हित मेरे घर पर ताला॥
मत बोल और कुछ वरना धक्का खाये॥ ३७॥

मन से मैंने तो तुमसे स्नेह किया है
क्या उसका बदला तूने यह दिया है।
मुझे क्या मालूम तुम बदलोगी ऐसे
लुटा दिये मैंने तुम पर सब पैसे॥
धन लेकर मेरा धक्का मुझे लगाये॥ ३८॥

नहीं जाते देख वेश्या ने ताली बजाई
खूंखार एक महिला तत्क्षण बाहर आई।
गणिका ने किया संकेत करो पिटाई
वरना यह मूरख छोड़े नहीं ढिठाई॥
मार के भय से मणीसुत निकल है जाये॥ ३९॥

वेश्या के घर से मणीसुत वह क्या निकला
दृश्य घूम गया जीवन का वह पिछला।
ओह ! नगर श्रेष्ठी सुत मैं गुणचन्द्र कहाता
पर आज आँख से आँख न कोई मिलाता॥
कुसंगति नर का कैसा हाल बनाये॥ ४०॥

संस्कार तात ने कितने अच्छे दिये थे
पर ग्रहण उन्हें मैंने तो नहीं किये थे।
अगर मान लेता मैं उनका कहना
तो मुझे न पड़ता अपयश, दुख यों सहना॥
दुख पाए बड़ों की आज्ञा जो ठुकराये॥ ४१॥

धन का मद मेरे ऊपर कैसा छाया
कुमित्रों ने आ उसको और बढ़ाया।
इज्जत भी खोई, धन भी सारा खोया
यह कैसा मैने बीज शूल का बोया॥
यह चिन्तन करता वह तो चलता जाये॥ ४२॥

धन खा गई सारा ऊपर कैसा धोखा
दुष्टा ने सोचने तक का दिया न मौका।
झूठे स्नेह में उसने मुझे फँसाया
मैं भी था पागल जो चक्कर में आया॥
जो भी आये वह जीवन में दुख पाये॥ ४३॥

दुनिया तो तमाशा देखे हँसते-हँसते
हैं काले नाग ये व्यसन जिंदगी डसते।
अच्छों की संगति सुख का मार्ग सुझाती
बुरे की संगति दुख के काँटे बिछाती॥
आज तथ्य यह मेरी समझ में आये॥ ४४॥

निज दुष्कर्मों पर बहुत वह शरमाया
सिर नीचा करके अपने घर वह आया।
दुराचरण की हवा में जो भी बहता
सिर उसका तो जग में नीचा ही रहता॥
शान से रहना हो सुपथ अपनाये॥ ४५॥

विजया ने देखा स्वामी घर पर आये
हो आग बबूला खोटी खरी सुनाये।
क्या पड़ा है घर में फिर से आये लेने
जो कुछ भी था सब ही तो दे दिया मैंने॥
अब तो प्राण हैं चाहे तो ले जाये॥ ४६॥

धन जिसे खिलाया पास उसी के जाओ
है पास मेरे क्या जो तुम आश लगाओ।
खाने को घर में एक नहीं है दाना
क्या बीती मुझ पर नहीं किसी ने जाना॥
तुम उस के चक्कर में मुझको रहे भुलाये॥ ४७॥

शर्म न आई जरा भी अपने मन में
क्या कमी थी यहाँ जो पहुँचे गणिका भवन में।
फटकार पत्नी की सुनता मणीसुत जाये
पश्चाताप में बोल फूट नहीं पाये॥
वह सुने पत्नी की सिर को वहाँ झुकाये॥ ४८॥

प्रिये ! मैंने तो लांघी लक्ष्मण रेखा
उसी का कुफल आज मैंने यह देखा।
बहुत बुरा यह रंग कुसंग का काला
आँखों पर इससे छा जाता है जाला॥
जो भाग्यवान है, चक्कर में नहीं आये॥ १९॥

हे प्यारी ! तूने मुझे बहुत समझाया
पर उस वेश्या का जादू मुझ पर छाया।
रूप - जाल में मैं ऐसा उलझाया
परिणाम होगा क्या सोच नहीं मैं पाया॥
अपनी करनी पर शर्म मुझे भी आये॥ ५०॥

धन था तब तक तो उसने गले लगाया
खत्म होते ही घर से मुझे भगाया।
प्रिये ! कसम खाता हूँ सामने तेरे
ये बहुत बुरे हैं दुर्व्यसनों के घेरे॥
अब भूल दुबारा मुझसे ना हो पाये॥ ५१॥

सुबह का भूला संध्या तक भी आए
वह व्यक्ति जग में भूला नहीं कहाए।
सोचे विजया स्वामी ने जानी सचाई
है खुशी परन्तु फूट पड़ी रूलाई॥
दो दिन से पेट में चूहे दौड़ लगाये॥ ५२॥

भूख सता रही लेकिन क्या यहाँ खाऊं
शर्म के मारे कह न किसी से पाऊं।
दो दिन हो गये हैं स्वामी ! कुछ नहीं खाया
केवल पीकर के पानी समय बिताया॥
कुछ लाओ ताकि भोजन शीघ्र बनाये॥ ५३॥

गुणचन्द्र कहे मैं स्वयं भूखा हूँ प्यारी
क्षुधा के कारण छा रही है अंधियारी।
पर किसके पास जाकर मैं दर्द सुनाऊं
मुझे तो लगता कौड़ी एक नहीं पाऊं॥
परिजन को जाकर कैसे मुँह दिखलाये॥ ५४॥

बात सत्य पर कुछ तो करना होगा
यह पापी पेट तो स्वामिन् ! भरना होगा।
बिन खाये काम भी तो नहीं चलने वाला
हाय रोग हमने कैसा यह
क्या करें समझ में कुछ भी तो नहीं

कहाँ जाऊँ क्या खाऊँ उधार माँग लाऊँ
इस भूख की पीड़ा से तो राहत पाऊँ।
भूखा मरत मुझसे तो नहीं है होती
भर भरकर पति के पदपद्मों को रोती॥
यह देख मणीभूत विचार मन में लाये॥ ५६॥

सबसे प्रथम परिजन के पास ही जाऊँ
देखूँ कुछ दे दें तो लेकर मैं आऊँ।
संकोच हृदय में, मन है भारी भारी
पर चला यार घर में, है उसकी लाचारी॥
परिजन ने आते देखा तो चिल्लाये॥ ५७॥

अरे मूर्ख ! क्यों आया द्वार हमारे
मुँह नहीं देखने लायक यों दुत्कारे।
मात-तात को घर से निकाला तूने
क्यों आया है तू इस देहरी को छूने॥
सुन ताने यों मणीभूत का मन मुरझाये॥ ५८॥

चुपचाप वहाँ से निकल बाहर वह आया
मानस मित्रों के पास जाने का बनाया।
निश्चय ही वे तो सुनेंगे पीड़ा मेरी
मीत-मीत की सुने करें नहीं देरी॥
यों सोच मित्रों के घर पर वह तो जाये॥ ५९॥

फलहीन विटप हो पंछी पास नहीं आते
धनहीन मनुज हो, पास न कोई बुलाते।
है स्वार्थभरी दुनिया यह भाई जानो
पैसे के बिना नहीं पूछ, सत्य यह मानो॥
देख मित्र को मित्र वे नजर चुराये॥ ६०॥

अहो ! मित्रों को कितना मैंने खिलाया
जब-जब जो चाहा इनके लिए मैं लाया।
बात करना तो दूर, नजर न मिलाई
वाह रे गरीबी दुखद तेरी परछाई॥
दुख सच्ची कसौटी, परख सभी हो जाये॥ ६१॥

हो उदास वह लौट पुनः घर आया
आकर विजया को उसने हाल सुनाया।
वह बोली स्वामी ! पास बहन के जाओ
है खून आपका मांग उसी से लाओ।
वह देख दशा कुछ रहम आप पर लाये॥ ६२॥

किस मुँह से भगिनी पास आज मैं जाऊं
व्यवहार किया जो सोच हृदय शरमाऊं।
तूने कहा क्या ? " घर पर आने न दूंगी
क्या लगती मेरे खबर जो उसकी लूंगी॥
मुझे तो फूटी आँख न वह सुहाये "॥ ६३॥

माँ ने निकाला हार बेटी को देने
बढ़ आगे छीना कर से वह भी तेने।
दृश्य घूम रहा नयन सामने सारा
कितना गर्म था तेरा उस पल पारा॥
अब किस मुँह से घर उसके मांगने जाये॥ ६४॥

लज्जित हूँ स्वयं मैं जो कुछ किया था मैनें
वे वचन सुनाये कैसे-कैसे पैने।
बुद्धि भ्रष्ट हो गई मेरी तो उस पल
मैं भोग रही हूँ आज उसी का प्रतिफल॥
पर एक बार जाकर तो आप अजमाये॥ ६५॥

भान पत्नी को साथ निकल वह जाए
मन मसोस माना मन बहन के घर वह आए।
देख भान को सुनन्दा झल्लाई
आज तुझे कैसे सुध बहन की आई॥
भर नयन से नीर, बोल नहीं पाये॥ ६६॥

अरे भान! माँ - बाप को घर से निकाला
क्या क्या आशाएं लेकर तुझे था पाला।
उनके सपनों पर फेरा तूने पानी
यों धकेला उन संग उन्होंने नहीं जानी॥
वे कहाँ, कैसे नहीं समाचार तक पाये॥ ६७॥

बन नारी दास माँ बाप का घर छुड़ाया
मान, इज्जत, यश सब को ही धूल मिलाया।
सुसंस्कार भी कुल के तूने त्यागे
इस जग में तुझसे होंगे कौन अभागे॥
निज पथ पर काँटे तूने खुद बिखराये॥ ६८॥

किस मुँह से मेरे पास आज तुम आए
तुझे देख कर मुझ आँखें शरमाए।
थी राज भवन तक शान भान क्या तुझको
नहीं रखा बोलने लायक तूने मुझको॥
बोल रही क्या तीर वह बरसाये॥ ६९॥

सुनने के सिवा भी और नहीं था चारा
कुकर्मों ने कीना लाचार, बेचारा।
गुणचन्द्र कहे-ऐसा क्या भगिनी बोले
शब्द - शब्द पर बरसे मानो शोले॥
क्यों मेरे घावों पर नमक आज छिड़काये॥ ७०॥

हूँ पापी, दुष्टी जीवन मलिन है मेरा
एक एक यहाँ वचन सत्य है तेरा।
पर दया करो समझो मेरी मजबूरी
क्षमा करो है यद्यपि गलती पूरी॥
तेरी भाभी भी करनी पर पछताये॥ ७१॥

भूख से हूँ बेहाल पीड़ा पहचानो
अब भूल न होगी पुनः सत्य यह जानो।
अधिक नहीं कुछ ही राशि पा जाऊं
तो क्षुधा-व्यथा से तो राहत मैं पाऊं॥
हाथ जोड़ यों मधुर वचन वह सुनाये॥ ७२॥

ज्वार क्रोध का मंद नहीं हो पाया
इसलिए असर नहीं भ्रात वचन ने दिखाया।
उल्टा और आवेश अधिक ही आया
मुझसे मांगते शर्म नहीं तू लाया॥
विषबुझे तीर से वचन वह बरसाये॥ ७३॥

मुझसे क्या उनसे मांग जिन्हें था खिलाया
मैं क्या लगती जो पास मेरे तू आया।
बहुत बड़ा यह नगर कहीं भी जाओ
कुछ भी पाने की आश न मुझसे लगाओ॥
क्यों मेरे घावों पर आकर नमक लगाये॥ ७४॥

तात मात का जिस दिन घर छुड़वाया
तब से ही तुझको मैने दिल से हटाया।
अपकर्म गंध चहुँ ओर तेरी है फैली
की तात प्रतिष्ठा - चादर तूने मैली॥
चला जा यहाँ से कह कर वह टरकाये॥ ७५॥

सब ही लोगों ने निज-निज दर्द जताया
सुन सबकी नृप ने अपना न्याय सुनाया।
जो हो कर दो नीलाम अभी सब जाकर
सन्तोष करो जो मिल जाये वह पाकर॥
है इसी लायक यह देर न आप लगाये॥ ८१॥

जो मिले तुम्हें धन बांट उसे सब लेना
सुन रहा मणीसुत नीचे करके नैना।
जहाँ जाए भर्त्सना सिवा नहीं कुछ मिलता
पापों के प्रस्तर पर तो कमल न खिलता॥
दुष्कर्म कभी सम्मान न जग में पाये॥ ८२॥

नृप कहे नयनों से दूर इसे ले जाओ
मत अधिक और आवेश मुझे दिलवाओ।
शस्त्रधारी कुछ सेवक आगे आए
गुणचन्द्र वहाँ पर बोल नहीं कुछ पाए॥
पहाड़ दुःखों का उस पर टूट है जाये॥ ८३॥

घायल दिल को ले अपने घर वह आया
आया तो उसने खड़ी भीड़ को पाया।
बढ़ - चढ़ कर बोली श्रेष्ठी वहाँ लगाते
जो जो था घर में बाहर सब ले आते॥
गुणचन्द्र खड़ा था अपना शीश झुकाये॥ ८४॥

जो लगा हाथ ऋण दाता वह ले जाए
चलो भगते चोर की हाथ लंगोटी आये।
एक एक कर चीजें सब बिक जाए
अब भीड़ भवन की बोली वहाँ लगाए॥
यह देख सामने सबके विजया आये॥ ८५॥



नवम – पटल

परिताप

दोहे

दुर्व्यसनों में जल गया, मम वैभव–उद्यान।
परिजन डाले घास ना, गल गया स्वाभिमान॥

दोष नहीं है अन्य का, की मैंने ही भूल।
आम भला कैसे मिले, बोया पेड़ बबूल॥

आज तात अरु मात की, लगी सताने याद।
त्यागा निज कर्त्तव्य को, चखा उसी का स्वाद॥

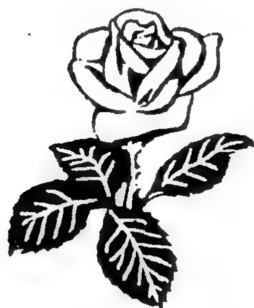
विजया बोली नाथ हम, जायेंगे किस ओर।
कैसे होगा गुजर अब, कहाँ मिलेगी ठौर॥

कर्म जिधर ले जायेंगे, चले चलेंगे पाँव।
मुझे पूर्ण विश्वास है, मिल जायेगी छाँव॥

अरे ! अरे ! मत इतना जुल्म ढहाओ
ले लिया सभी, नहीं भवन पे नजर टिकाओ।
कहाँ जायेंगे हम इतनी दया तो लाओ
मन निष्ठुर अपना इतना नहीं बनाओ॥
सुनके बात यह लोग ठहाका लगाये॥ ८६॥

सास-श्वसुर को घर से तूने निकाला
समझो उस घर पर तेरे लिए भी ताला।
मणीचन्द्र के साथ गई सब माया
किया था जैसा ही फल आज है पाया॥
यों भांति-भांति के वचन तीर बरसाये॥ ८७॥

नहीं सुना किसी ने आखिर बोली छूटी
गुणचन्द्र ने पीली वहाँ जहर की घूंटी।
नृप सुभटों ने उनको घर से निकाला
भवन हुआ नीलाम गया लग ताला॥
" कमल प्रभा " पति पत्नी अश्रु बहाये॥ ८८॥





नवम – पटल

परिताप

दोहे

दुर्व्यसनों में जल गया, मम वैभव–उद्यान।
परिजन डाले घास ना, गल गया स्वाभिमान॥

दोष नहीं है अन्य का, की मैंने ही भूल।
आम भला कैसे मिले, वोया पेड़ ववूल॥

आज तात अरु मात की, लगी सताने याद।
त्यागा निज कर्त्तव्य को, चखा उसी का स्वाद॥

विजया बोली नाथ हम, जायेंगे किस ओर।
कैसे होगा गुजर अब, कहाँ मिलेगी ठौर॥

कर्म जिधर ले जायेंगे, चले चलेंगे पाँव।
मुझे पूर्ण विश्वास है, मिल जायेगी छाँव॥

आँखों में आँसू भरे, जाना है घर छोड़।
"कमल प्रभा" देखे कथा, कैसे लेती मोड़॥

पूर्ववत्

ओह ! दुष्कर्मों ने पानी आज उतारा
यहाँ रहने में नहीं सार हृदय में धारा।
गुणचन्द्र चला है सिर को करके नीचे
विजया भी चल दी उसके पीछे-पीछे॥
वे भूखे प्यासे निकल नगर से जाये॥ १॥

भरी दुपहरी, कदम वे शीघ्र उठाए
चले जा रहे कर्म जिधर ले जाए।
कब चले थे पैदल फूलों पर चलने वाले
पर किसे दोष दें किए कर्म ही काले॥
एक वृक्ष के नीचे निशा बिताये॥ २॥

आँसू बहाये पकड़ पति का कंधा
धन के नशे ने किया हमें तो अंधा।
स्वर्ण थाल सा चमक रहा था चंदा
मानो वह कहता बुरा व्यसन का फंदा॥
दुर्व्यसन सदा नर की दुर्दशा बनाये॥ ३॥

मैंने ही प्रिय ! जीवन में जहर भरा है
घर की सुषमा को पतझड़ सरिस हरा है।
कुसंग का मैंने दिया आपको मोका
बढ़ता न रोग यदि होता आपको टोका॥
वह निज आंचल से नयन पौंछती जाये॥ ४॥

मात-तात को हमने बहुत सताया
उसी का हमने आज यह फल पाया।
भाग्यशाली, पुण्यवान सेठ सेठानी
वे जहाँ भी होंगे सुखी होंगे लो जानी॥
प्रिय ! पहला काम हम उनकी खोज में जाये॥ ५॥

अगर पता लग जाए दुख मिट जाए
निश्चित ही वे तो हमको गले लगाए।
भले ही है अपराध हमारा भारी
पर क्षमा करेंगे भूलें तात हमारी॥
हम विनय भाव रख उनको शीश झुकाये॥ ६॥

वे थके हुए पर नींद न उनको आये
इत भूख अनल भी बढ़ती ही है जाये।
दूर क्षितिज में सूरज निकल रहा था
वह तम को मानो क्षण - क्षण निगल रहा था॥
वन प्रभाती सुषमा अद्‌भुत रंग बरसाये॥ ७॥

जा रहे मृगों के झुण्ड कुलांचे भरते
विहग उड़े वृक्षों से फर्र-फर्र करते।
कुछ अग्रपाद से उठा गिलहरी खाये
जा रही वानरी शिशु को वक्ष लगाये॥
दिव्य प्रभा दिनकर की फैलती जाये॥ ८॥

दृश्य बड़ा मनहर पर पड़ेगा जाना
जंगल में क्या होता कहीं ठिकाना।
पुरुष अकेला हो तो भी चल सक
नारी के साथ नहीं वन में नर रह
आग पेट की उनको

चले जा रहे वृक्ष नजर कुछ आए
फलदार विटप को देख हृदय हरसाए।
जल्दी-जल्दी कदम उठा वे पहुँचे
फल लगे हुए थे उन पर कुछ ही ऊँचे॥
साहस कर मणीसुत ऊपर चढ है जाये॥ १०॥

जितने चाहिए उतने फल हैं तोड़े
फलाहार पाकर प्रभु को कर जोड़े।
नाथ ! आप ही सबके हो रखवाले
दुनियाँ तो अपना-अपना स्वार्थ पाले॥
फलों को ले मणीसुत नीचे है आये॥ ११॥

नवकार मंत्र गिन फल उन्होंने खाए
धधक रही जो आग राहत कुछ पाए।
कुछ बढ़े आगे तो झरना पथ में आए
जल पी करके वे अपनी तृषा बुझाए॥
कर हाथ पाँव प्रक्षालन सुस्ती उड़ाये॥ १२॥

चलते-चलते ग्राम एक है आया
कुछ काम किया बदले में पैसा पाया।
ले खाद्य सामग्री भोजन वहाँ बनाया
खा पीकर उसको आगे कदम बढ़ाया॥
करते काम वे जहाँ भी जो मिल जाये॥ १३॥

कब किया काम पर पेट की है मजबूरी
बड़ों बड़ों का अहं कर्म दे चूरी।
मत बांधो हँस-हँस कर्म ज्ञानी जन कहते
नानी याद आएगी पाप-फल सहते॥
हाँ तो मजदूरी कर वे काम चलाये॥ १४॥

यों निकल रहे दिन आगे चलते जाए
है नहीं ठिकाना जहाँ पर पैर जमाए।
मात-तात का पता न अब तक पाया
है जीवित या नहीं मन में संशय छाया॥
हे प्रभो ! कोई आ उनका पता बताये॥ १५॥

पहुँचे एकदा चम्पा चलते-चलते
देखा लोगों को झुण्ड के झुण्ड निकलते।
पूछा विजया ने लोग कहाँ ये जाते
गुणचन्द्र कहे, ठहरो हम पता लगाते॥
जनसमूह ओर वे दोनों कदम बढ़ाये॥ १६॥

पूर्णभद्र उद्यान है शोभाशाली
छटा लिए हर्षित थी वहाँ हरियाली।
भिन्न-भिन्न जाति के तरुवर सुन्दर
मखमली बिछी थी दूब बाग के अन्दर॥
पता लगाने मणीसुत उधर ही जाये॥ १७॥

पूछा एक से कारण क्या है भाई ?
इतने नर-नारी दे रहे आज दिखाई।
बोला वह यहाँ पर श्रमण केशी मुनि आए
उनके दर्शन को लोग सभी ये जाए॥
सुन करके यह गुणचन्द्र अति हरसाये॥ १८॥

लोगों के साथ उद्यान में दोनों आए
वहाँ समवसरण सा ठाठ अनोखा पाये।
कर दर्शन मुनि को विधिवत् शीश झुकाया
फिर धर्म सभा में निज निज स्थान बनाया॥
विनय, सेवा पर मुनि व्याख्यान सुनाये॥ १९॥

स्नेह, विनय हो करे वही तो सेवा
सेवा से मिलता भाई जग में मेवा।
आत्मबोध कर क्रोध मिटाए मन का
बन जाता है प्रिय पात्र वह जन जन का।
चन्दन सम सौरभ " कमल प्रभा " फैलाये॥ २०

दोहे

अल्प बुद्धि भी विनय से, करे कर्म का नाश।
बिना विनय होता नहीं, मन में ज्ञान – प्रकाश॥

विनयवान बन मोक्ष का, मनुज खोलता द्वार।
अहंकार जो नर करे, कर न सके उद्धार॥

विनय साथ सबके प्रति, हो यदि सेवाभाव।
"कमल प्रभा" तिर जात हैं, उसकी जीवन नाव॥

पूर्ववत्

रह दूर अहं से सेवा सबकी करिए
हर कर दुख सबके पुण्यों का घट भरिए।
बिन सेवा जग का काम नहीं चल पाता
कण – कण वसुधा का हमको पाठ पढ़ाता॥
'परस्परोपग्रहः' सूक्ति यही सिखाये॥ २१॥

संतति से करते प्यार पिता व माता
बचपन के प्यार में जुड़ा सेवा का नाता।
उनकी सेवा ही शिशु को जीवन देती
वरना आ मृत्यु उसके प्राण हर लेती॥
सेवा का अमृत शिशु के प्राण बचाये॥ २२॥

वार्धक्य आने पर रहे सेवा की अपेक्षा
उस समय संतति करे अगर उपेक्षा।
तो दशा बने क्या उनकी सोचो मन में
नहीं शक्ति रहती है उनके तो तन में।
अतः सेवा कर उनकी फर्ज निभाये॥ २३॥

यों धरा परस्पर की सेवा से टिकी है
सभी धर्मों ने महिमा इसकी लिखी है।
जीवन का चमन यह सेवा से खिलता हैं
आनन्द अनोखा सेवा से मिलता है॥
हैवान वह सेवा से जो कतराये॥ २४॥

दीन, दुखी, निर्बल को नेह लुटाओ
कर सेवा आशीर्वाद सभी का पाओ।
आशीष कभी भी निष्फल नहीं है होती
अतः सेवा के सदा बिखेरो मोती॥
विनय, सेवा से जग को स्वर्ग बनाये॥ २५॥

दोहे

विनय, सेवा व प्रेम का, सुन करके व्याख्यान।
मन ही मन करने लगे, सब निज निज पहचान॥

प्रवचन पूरा हो गया, उठे सभी नरनार।
सिसक पड़ा गुणचन्द्र तो, बही अश्रु की धार॥

मन ही मन वह बोलता, मुझको है धिक्कार।
मैंने खोला नरक का, निज कर से ही द्वार॥

झर झर मणीसुत के निर्झर दोनों झरते
जिनदत्त श्रेष्ठी ने देखा आहें भरते।
पास में आकर बोला-कौन हो भाई ?
क्यों फूट पड़ी अन्तर से यह रुलाई॥
है कारण क्या ? निःशंक मुझे दरसाये॥ २६॥

रुके न रोना बोल नहीं वह पाये
कर थाम श्रावक वह संत पास ले जाये।
बैठ गये दोनों ही वन्दन करके
क्या बात ? मुनिवर बोले स्नेह मन भरके।
क्यों आर्त ध्यान यह भाई ! मन में लाये॥ २७॥

सुख, दुख जीवन में आते ही रहते हैं
क्या हँसना रोना ज्ञानी जन कहते हैं।
सुख आये तो भी क्या उस पर इतराना
दुख आये तो भी क्या उससे घबराना॥
सुख-दुख, दुख-सुख क्रम चलता ही जाये॥ २८॥

अभी उजाला, सांझ होते ही अंधेरा
पुनः प्रातः तम चीर के लाता उजेरा।
यों प्रभा तमस का खेल है चलता रहता
जीवन सरिता में सुख दुख नीर है बहता॥
हो प्रयास कि समभाव बना रह पाये॥ २९॥

आर्तध्यान करने से दुख नहीं मिटता
अशुभ कर्म-बादल भी नहीं है छंटता।
फल तो भोगना पड़े किये कर्मों का
है कथन यही जग में सब ही धर्मों का॥
इसलिए आर्त तज धर्म में चित्त रमाये॥ ३०॥

सुन मुनि की वाणी दुख आवेग घटा है
सदा एक सी रहे न नभ में घटा है।
पौंछ नयन उसने मुनि ओर निहारा
आभा से चमक रहा था चेहरा प्यारा॥
हाथ जोड़ वह परिचय अपना सुनाये॥ ३१॥

कनकपुरी का मैं हूँ रहने वाला
कुसंगति ने मन मेरा कर दिया काला।
दुख मात-तात को मैंने बहुत दिया था
सुत हो कर भी उनको, संतप्त किया था॥
उसी का फल यह हाल मेरा हो जाये॥ ३२॥

मणीचन्द्र जी तात मेरे हैं नामी
मैं पुत्र हूँ उनका सुनिये हे गुणधामी !
वरदहस्त जबसे ही उनका छूटा
दुर्भाग्य ने मुझको बुरी तरह से लूटा॥
जीवन की सारी खुशियाँ लुट है जाये॥ ३३॥

हैं देव मेरे तो मात-तात सुखदाता
लेकिन मैंने ही तोड़ा उनसे नाता।
घर से बेघर उनको यहाँ किया है
जो किया था उसका फल भी भोग लिया है॥
लुट पिट कर के अब आज यहाँ तक आये॥ ३४॥

अमृतवाणी सुन गुरुवर ! बोध मिला है
सुन अविनय का फल मेरा हृदय हिला है।
कैसे भोगूंगा कर्म किए जो भारी
छूटूं कैसे भी युक्ति कहो गुणधारी॥
यह सोच-सोच कर मन कंपित हो जाये॥ ३५॥

मैं दुराचारी, अधन्य पापी हूँ गुरुवर !
फिर लगी बरसने उसकी आँखें झरझर।
मुनिराज कहे रोने में कुछ नहीं पाओ
है भला इसी में पुनः नहीं दोहराओ॥
भूल मान सुधरे वह विज्ञ कहाये॥ ३६॥

खो गये विचारों में कुछ पल वे मुनिवर
ओह ! मणीचन्द्र का हाल बना यों दुखकर।
नगर सेठ सुत पर हुई दशा यह कैसी
होता भी वही है, होती करणी जैसी॥
सुख-दुख मिलना ही, कर्म उदय जब आये॥ ३७॥

धैर्य दिलाते, संत कहे मत रोओ
है जीवन यह अनमोल इसे मत खोओ।
बीती पर रोने से क्या मिलने वाला
है सुज्ञ वही भूलों को जिसने निकाला॥
नर सुखी होने का राज इसी में पाये॥ ३८॥

एक बात जो कहूँ ध्यान से सुनना
शूल नहीं बगिया से फूल ही चुनना।
विनय, सेवा जो सुख का पंथ निराला
दुख पाता उससे हटकर चलने वाला॥
कुपथ का राही आखिर में पछताये॥ ३९॥

मात-तात से मिलन यदि हो जाए
क्षमा मांगकर उनको शीश झुकाये।
फिर सेवा में लग उनको साता देना
सुख देकर के आशीष सदा ही लेना॥
मत करना काम जो उनको दुख उपजाये॥ ४०॥

हाथ जोड़ मणीसुत वह शिक्षा सुनता
उपदेश सुमन सुमाली के सम चुनता।
गुणचन्द्र कहे भंते ! सच ही फरमाया
इस पथ भटके को पथ स्वामी दिखलाया॥
बस एक चाह कि मात तात-मिल जाये॥ ४१॥

जिनदत्त श्रावक ने परिचय जब सब पाया
है स्वधर्मी यह जान हृदय हरसाया।
आग्रह कर बोला मुझ पर महर कराओ
चलो पधारो घर पर भोजन पाओ॥
फिर कहाँ आपके तात पता लगवायें॥ ४२॥

हाथ पकड़ गुणचन्द्र को श्रेष्ठी उठाए
फिर गुरु चरणों में वे सब शीश झुकाए।
जिनदत्त उन्हें ले बाग से बाहर आया
साग्रह रथ में बिठा उन्हें घर लाया॥
गुणचन्द्र भवन को देख वहाँ चकराये॥ ४३॥

जगह-जगह आंगन में हीरे जड़े हैं
कदम-कदम पर सेवक वहाँ खड़े हैं।
भव्य भवन पर जिधर दृष्टि दौड़ाए
सुषमा लख आँखें हटती नहीं हटाए॥
सुन्दरता स्वर्ग की मानो उतर है आये॥ ४४॥

दोनों को साथ ले श्रेष्ठी कक्ष में आया
ऊँचे आसन पर मान सहित बिठाया।
फिर खुद भी बैठा आसन पर वह श्रेष्ठी
नयन मूंद कर गिने पंच परमेष्ठी॥
इतने में श्रेष्ठी सुत भी वहाँ पर आये॥ ४५॥

तात-मात को झुक कर नमन किया है
कर सर पर धर उनने आशीष दिया है।
इतने में जल ले पुत्रवधू है आई
कर नमन कलश उनके कर दिया थमाई॥
गुणचन्द्र पत्नी संग देखे नजर टिकाये॥ ४६॥

संकेत पाते ही अनुचर दौड़ा आया
जो रजत पाट लाया था वह लगाया।
मखमल के दो आसन वहाँ बिछाए
फिर स्वर्णथाल में भोजन लेकर आए॥
कर आग्रह श्रेष्ठी भोजन उन्हें कराये॥ ४७॥

स्वादिष्ट सरस फिर स्नेह रस और निराला
बिन प्रेम - स्निधता नीरस लगे है आला।
खिला उन्हें वे सेठ सेठानी खाए
उनके बाद ही परिजन भोजन पाए॥
गुणचन्द्र देख यह मन ही मन शरमाये॥ ४८॥

गुणचन्द्र पत्नी की ओर देख कर बोले
हो पुत्र, पुत्रवधू कैसे निज को तोले।
हम कहाँ और ये कहाँ यह समझो प्यारी
हम तम मावस का, ये पूनम उजियारी॥
धवल चंद्रिका कैसी मन को सुहाये॥ ४९॥

मात-तात प्रति कैसा विनय है इनमें
कहाँ ऐसी सरलता, विनयशीलता हममें।
इतना वैभव, पर अहं जरा नहीं मन में
है कितना प्रेम आ-आ पूछे पल-पल में॥
यह प्रेम, सेवा ही लक्ष्मी को ठहराये॥ ५०॥

पुण्यहीन, सचमुच ही हम तो अभागे
दुख पाता है वह सुपथ जो भी त्यागे।
धन के नशे ने अपना ज्ञान हरा है
कुसंगति ने फिर हमको और भरा है॥
हम खोकर के विवेक बहुत इतराये॥ ५१॥

मात-तात के मन को हमने जलाया
कभी भी खुश हो हुक्म न उनका उठाया।
जब जब भी कही कुछ हित की हम घुर्राये
क्या होगा इसका फल हम सोच न पाये॥
यों पश्चाताप गुणचन्द्र हृदय में लाये॥ ५२॥

दिन निकल गया संध्या सुहानी आई
जिनदत्त कहे आ पास में सुनिए भाई।
सामायिक लेकर ध्यान प्रभु का धरले
अरु प्रतिक्रमण कर पापालोचन करले॥
फुरसत न मिले कार्यों से करते जाये॥ ५३॥

बैठ गया जिनदत्त साथ सेठानी
गुणचन्द्र संग विजया यों चारों प्राणी।
एकाग्र चित्त बैठे सामायिक लेके
गुणचन्द्र पाप निज सानुताप है देखे॥
अन्तर्दृष्टि अवलोकन में खो जाये॥ ५४॥

सामायिक आने पर सेवक बुलवाया
शयन कक्ष में उनको फिर भिजवाया।
चिन्ता के कारण निद्रा उन्हें न आए
पश्चाताप की ज्वाला उन्हें जलाए॥
काश ! श्रेष्ठीसुत सम जीवन बन जाये॥ ५५॥

पूरी रात वह नींद नहीं ले पाया
भोर पूर्व उठ प्रभु का ध्यान लगाया।
नई प्रभा ले नभ में दिनकर आया
आलोकित अचलांचल उसने है बनाया॥
गुणचन्द्र श्रेष्ठी को जाकर शीश झुकाये॥ ५६॥

दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो वह आया
श्रेष्ठी के साथ फिर प्रातराश है पाया।
वे यथा समय दोनों पेढी पर जाये
मणीसुत का परिचय श्रेष्ठी वहाँ कराये॥
सुन परिचय सब वे विस्मय मन में लाये॥ ५७॥

बात-बात में बात एक यह आई
पयठाणपुरी में श्रेष्ठी एक है भाई।
वे दानी, धर्मी, बहुत दयालु मन के
दुख दूर करे जो आए पास में उनके॥
मणीचन्द्र है नाम पता करवायें॥ ५८॥

सुन बातें उनकी हर्ष हुआ है भारी
वह मणीसुत बोला वाणी फले तुम्हारी।
पयठाणपुरी में काश ! तात मिल जाये
जब देखूं तब ही चैन मुझे तो आये॥
उस नगरी का पथ आप मुझे बतलाये॥ ५९॥

त्वरित श्रेष्ठी ने सारथी को बुलवाया
पयठाणपुरी जाना उसको समझाया।
आदेश पाते ही स्वर्णिम रथ है आया
गुणचन्द्र को उसमें विजया संग बिठलाया॥
वे हाथ जोड़ते विदा वहाँ से पाये॥ ६०॥

वल्गा सारथी खींच के ढीली छोड़े
अश्व चार वे पवन सरिस है दौड़े।
गले के घुंघरू मीठी तान सुनाये
तात मिलन होगा मानो वे गाये॥
वन के दृश्य तो आज बहुत मन भाये॥ ६१॥

मन प्रसन्न हो हर दृश्य रुचिर है लगता
बिना खुशी के लगता वही सुलगता।
सुख दुख सारे मन के संग जुड़े है
धन्य हैं वे जिनके मन जग से मुड़े हैं॥
चंचल मन पल-पल में रूप पलटाये॥ ६२॥

सूरज पश्चिम में आया चलते-चलते
पुर बहि वे पहुँचे रवि के ढलते-ढलते।
मुख्य द्वार पर आकर रथ ठहराया
द्वारपाल को खड़ा वहाँ तो पाया॥
गुणचन्द्र पास में आ निज भाव बताये॥ ६३॥

क्या महाश्रेष्ठी मणीचन्द्र यहाँ पर रहते ?
दानी, दयालु लोग जिन्हें सब कहते।
यदि जानो तो इतना सा कष्ट कराओ
उनके भवन का भाई पथ बतलाओ॥
उनसे मिलने हम दूर देश से आये॥ ६४॥

द्वारपाल कहे चले सीधे ही जाओ
नगर मध्य में भवन भव्य इक पाओ।
पूछ लेना घर बता कोई भी देगा
उनके नाम से रस हर कोई लेगा॥
धन्यवाद दे रथ को आगे बढ़ाये॥ ६५॥

रुक-रुक पूछते उसी स्थान पर आए
आकर के वहाँ पर वही प्रश्न दोहराए।
यह भवन है किसका भाई ! हमें बताना
वह बोला, लगता प्रथम बार हुआ आना॥
महाश्रेष्ठी मणीचन्द्र का घर यह कहाये॥ ६६॥

गुणचन्द्र उतर कर रथ से भवन निहारे
क्या इसी भवन में रहते तात हमारे।
यदि है तो कैसा उनका भाग्य सवाया
जो यहाँ पर भी आ इतना वैभव पाया॥
तभी पूछता सेवक, कहाँ से आये ?॥ ६७॥

क्या आज्ञा मेरे लिये आप बतलाये ?
क्यों खड़े हैं बाहर अन्दर को आ जाये।
संदेश अगर हो कोई तो पहुँचाऊं
क्या नाम आपका कह दो जा बतलाऊं॥
तभी टहलते श्रेष्ठी नजर है आये॥ ६८॥

उछल पड़ा गुणचन्द्र खुशी के मारे
अरे ! उधर वे जा रहे तात हमारे।
मंजिल हमने तो आज भाग्य से पाई
हर्ष के कारण आँखें है भर आई॥
सेवक से कहे श्रेष्ठी से हमें मिलाये॥ ६९॥

चलिए, कहकर सेवक कदम बढ़ाये
जहाँ मणीचन्द्र जी थे वहाँ पर वे आये।
देख पिता को उसने पाँव गहे हैं
निर्झर से उसके दोनों नयन बहे हैं॥
मणीचन्द्र यह देखके विस्मय लाये॥ ७०॥

जब श्रेष्ठी ने गुणचन्द्र को वहाँ पहचाना
तो बोले अरे सुत यहाँ कैसे हुआ आना।
बाँह पकड़ कर उसको त्वरित उठाया
शर्म के मारे मणीसुत बोल न पाया॥
विजया भी आकर अपना शीश झुकाये॥ ७१॥

तभी सुभद्रा चली वहाँ पर आई
सुत को देखा तो खुशी हृदय में छाई।
दोनों ने झुक माता को नमन किया है
माँ ने भी उनको आशीर्वाद दिया है॥
हर्ष के अश्रु नयन सभी टपकाये॥ ७२॥

यह देख सेवक सब एक एक कर आए
परिचय पाकर यह वे भी सब हरसाए।
माहौल बना वहाँ खुशी का उस पल भारी
काली रजनी भी लगी उन्हें उजियारी॥
जैसी हो दृष्टि नजर वैसा ही आये॥ ७३॥

माँ बोली बेटे ! याद कैसे है आई
गुणचन्द्र ने घटना बीती सर्व सुनाई।
आप बड़े हैं क्षमा हमें कर दीजै
अपने चरणों में आप हमें रख लीजै॥
सेवक बन अपना जीवन शेष बिताये॥ ७४॥

होनी है वह तो बेटे ! नहीं है टलती
नादानी से हो जाया करती गलती।
पर ठोकर खाकर संभल अगर नर जाए
तो पतन से निज जीवन को वह बचाए॥
हो पश्चाताप तो पाप हल्का हो जाये॥ ७५॥

है खुशी भूलों को तुमने आज स्वीकारा
मिट गया तुम्हारे अन्तर का अंधियारा।
अब नये ढंग से जीवन अपना संवारो
शुभ भावों को मत मन से कभी उतारो॥
यह वह जीवन जिस हेतु सुर ललचाये॥ ७६॥

इस घर का वैभव अब सब अपना जानो
जीवन का है क्या मूल्य ? इसे पहचानो।
व्यापार संभालो, धर्म कभी ना भूलो
नरतन पाया तो परमानन्द में झूलो॥
दो छुट्टी साधना में हम अब लग जाये॥ ७७॥

बात-बात में बीती रजनी सुहानी
है विचित्र जग में इन कर्मों की कहानी।
प्रातः होने पर रथिक सामने आए
नमस्कार हो कहते बात बताये॥
जाना है जल्दी आज्ञा आप दिरायें॥ ७८॥

गुणचन्द्र कहे जल्दी क्या चले तुम जाना
पता नहीं कब होगा फिर यहाँ आना।
प्रेम आपका लेकिन मुझे है जाना
नहीं माना तो सस्नेह किया रवाना॥
रथ दौड़ाते वह शीघ्र नगर में आये॥ ७९॥

गुणचन्द्र पिता की आज्ञा अब नहीं टाले
है पुण्य-उदय जो बीते दिन वे काले।
विजया सास की सेवा में रत रहती
करे वही जो सास उसे है कहती॥
आनन्द, खुशी में समय बीतता जाये॥ ८०॥



दशम – पटल

परिष्कार

दोहे

मावस बीती आ गई, पूनम वाली रात।
मणीचन्द्र घर में हुआ, नूतन पुण्य–प्रभात॥

समय निकलता जा रहा, गूँज रहे सुख साज।
श्रेष्ठी का अब तो करे, आदर सकल समाज॥

एक सहारा धर्म का, और नहीं है कोय।
तजे जो इसको मूढ वह, जन्म–जन्म में रोय॥

विचरण कर पयठाणपुर, आए प्रभुवर वीर।
दिव्य देह, अम्बुज नयन, है वाणी गम्भीर॥

ठहरे प्रभुवर बाग में, दर्शन हित नरनार।
दौड़े–दौड़े जा रहे, ले–ले निज परिवार॥

सेवक ने मणीचन्द्र को, दिया वहाँ संदेश।
जिनवर आये बाग में, देंगे वे उपदेश॥

स्वजनों को ले साथ में, चला त्वरित मणीचन्द्र।
जैसे भू पर चल रहा, देव संग में इन्द्र॥

पूर्ववत्

रथ पैदल, हाथी, घोड़े पर जन आये
बगिया के बाहर सब पैदल हो जाये।
देख प्रभु को दूर से शीश झुकाये
स्वयं इन्द्र भी दर्शन पा हरसाये॥
वर्णन बगिया का शब्द नहीं कर पाये॥ १॥

समवशरण की रचना थी अति प्यारी
अनुशासन में सब बैठे हुए नरनारी।
भव्य एक सिंहासन बना था ऊँचा
रत्न जड़ित सोने का वह समूचा॥
उस पे विराजित प्रभुवर बहुत सुहाये॥ २॥

नृप भी ले परिवार वहाँ पर आया
प्रभु दर्शन पाकर जन मन अति हरसाया।
भवजल तारिणी देशना प्रभु फरमाये
भूल विहग भी अपना कलरव जाये॥
वचन वचन पर अमृत प्रभु बरसाये॥ ३॥

मत बांधो कर्म मुश्किल है भोगना होता
हो उदित कर्म यदि अशुभ प्राणी फिर रोता।
सत्य मानिए सत्पथ को जो तजता
जन्म-मरण बंधन में वही उलझाता॥
यों जनम-जनम, मर-मर वह दुख उठाये॥ ४॥

अंतः हृदय में ज्ञान का दीप जलाओ
अन्तर का अंधेरा भाई दूर भगाओ।
उठ ऊपर मोह से निज अन्तर में निहारो
भव-सागर भटकी नैया पार उतारो॥
सम्यग्दृष्टि बन आत्मरमणता लाये॥ ५॥

अन्तर - वैभव पाने का नरतन मौका
मत खोओ इसको जगमाया तो धोखा।
जो भी फँसा दुख कष्ट उठाया उसने
कर्मों से बचो नहीं छोड़ा किसी को इसने॥
जो संभल जाये वह जीवन सफल बनाये॥ ६॥

प्रभु मौन हुए उपदेश सभी को देकर
सब शान्त चित्त थे भाव हृदय में लेकर।
श्रद्धा भाव से सुनी वह अमृत वाणी
धन्य-धन्य है कह उठे सब प्राणी॥
सुर पुष्प वृष्टि कर मन ही मन हरसाये॥ ७॥

हर ओर खुशी का दृश्य बना था भारी
वैराग्य जगा, कई लोग बने व्रतधारी।
गुणाचन्द्र प्रभु के चरणों में है आया
श्रावक व्रत पालूं भाव यह दरसाया॥
वीर प्रभु सुन नियम उसे करवाये॥ ८॥

कर दर्शन निज-निज स्थान गए नरनारी
गुणाचन्द्र हृदय में हर्ष आज है भारी।
वह मात-तात की आज्ञा में नित चलता
मुख नीरज उसका हरपल रहता खिलता॥
सुश्रावक बन वह जीवन अपना बिताये॥ ९॥

दया, दान कोई भी अवसर आता
सत्कर्मों में वह अपना हाथ बढ़ाता।
व्यापार में भी नहीं न्याय नीति वह भूले
पा अतुल संपदा नहीं अहं में फूले॥
नशा वैभव का कैसा याद है आये॥ १०॥

मात-पिता की सेवा में रस लेता
विषय सुखों में ध्यान अधिक नहीं देता।
ठोकर खाकर के ज्ञान उसे तो आया
वह जान गया कि झूठी है सब माया॥
जो उलझे इसमें वह तो कष्ट उठाये॥ ११॥

सोचे विजया, मुझ सुध कोई नहीं लेते
स्वामी भी मुझ पर ध्यान नहीं है देते।
सुबह शाम जो मिले वह मैं खाऊं
दासी के सम जीवन मैं यहाँ बिताऊं॥
अपमान यह तो मुझ से सहा न जाये॥ १२॥

पटका-झटका, दास-दासी फटकारे
बात-बात पर उनको वह दुत्कारे।
कहे सुभद्रा बहू व्यवहार सुधारो
बहुत हो गया अब तो निज को उबारो॥
दाँत पीस कर विजया तो रह जाये॥ १३॥

गुणचन्द्र पत्नी को बार-बार समझाता
व्यवहार तुम्हारा मुझे नहीं यह भाता।
पहले ही हमने कितना कष्ट उठाया
है भले तात जो हमको गले लगाया॥
भगवान करे वे दिन फिर लौट न आये॥ १४॥

छोड़ो यह आदत, प्रकृति अपनी सुधारो
मुझ माता सदृश समता मन में धारो।
तुम मिथ्या अहं से ही इतना दुख पाई
अब भी बिगड़ा कुछ नहीं तो मन समझाई॥
वाणी का संयम जीवन सरस बनाये॥ १५॥

समझाने पर भी समझ उसे नहीं आती
जली कटी स्वामी को नित्य सुनाती।
भले ही यहाँ आ पैसा बहुत कमाया
पर मुझको तो सुख नहीं कभी मिल पाया॥
मन आए ज्यों वह आग उगलती जाये॥ १६॥

कुपित होकर गुणचन्द्र पत्नी से बोले
क्यों शब्द अनर्गल फैंको बिना ही तोले।
पीहर जाने की धोंस न मुझको देना
जो उचित लगे वह निर्णय खुद कर लेना॥
वह बोली मुझको कल पीहर पहुँचाये॥ १७॥

अगले ही दिन गुणचन्द्र ने रथ मंगवाया
एक दासी के साथ पीहर पहुँचाया।
छू के पिता के चरण वह तो रोई
सुध लेने मेरी आप न आए कोई॥
उस घर में मेरी एक नहीं चल पाये॥ १८॥

सास श्वसुर ने काम काज सब छोड़ा
स्वामी ने निज को उन सेवा से जोड़ा।
नहीं कुछ भी पूछ है मेरी तो उस घर में
कीर्ति प्रशंसा भी तीनों की पुर में॥
मेरी ओर तो ध्यान किसी का न जाये॥ १९॥

लगता उस घर में नहीं है कोई मेरा
कुछ समझ न आता छाया नयन अंधेरा।
श्वसुर गेह तज पीहर पड़ा है आना
हे तात ! वहाँ से उठ गया पानी - दाना।
मैं आई शरण में आप मुझे अपनाये॥ २०॥

सुन सुता की बातें रोष हृदय में छाया
रे मूर्खे ! तेने कैसा कदम उठाया।
निज इच्छा से तू मेरे यहाँ पर आई
यह बात तेरी मेरे तो मन नहीं भाई॥
सुदत्त सुता पर क्रोध में भर चिल्लाये॥ २१॥

सास तुम्हारी धर्म मूर्ति यह जानूं
वह दुख देती है नहीं यह मैं मानूं।
लाखों में ढूंढो श्वसुर मिले नहीं वैसे
पर सुखी रहे नहीं कहीं तुम्हारे जैसे॥
क्यों यहाँ आ मेरी शान धूमिल बनाये॥ २२॥

किस मुँह से आई चली अभी तुम जाओ
मेरे घर में भी जगह नहीं तुम पाओ।
धर्मनिष्ठ वे तीनों सरल स्वभावी
जिद बचपन से ही तुझ पर रही है हावी॥
विवश खड़ी माँ उसकी बोल नहीं पाये॥ २३॥

सुन तात बात भौंचक्की वह रह जाए
ले आश आई जो प्रतिकूल यहाँ पाए।
इक पल नयनों के आगे छाया अंधेरा
यदि तात रखे नहीं कहाँ होगा मम डेरा॥
धोबी का श्वान घर-घाट का नहीं रह पाये॥ २४॥

काँप उठी वह ज्यों ही विचार यह आया
सब ओर से निज को निराधार है पाया।
पकड़ पिता के चरण वह विजया बोली
बोली क्या तात ने उसकी आँखें खोली॥
सु मात-तात ऐसा ही रुख अपनाये॥ २५॥

गलत पक्ष जो मात-तात हैं लेते
वे निज संतति की पतन नींव है देते।
कुलीन परिजन कभी न ऐसा करते
वे लोक लाज से दुनिया में हैं डरते॥
जो डरे नहीं वह जीवन बना न पाये॥ २६॥

अहो ! तात मत रोष ऐसा दिखलाओ
हूँ जली हुई मैं नमक नहीं छिड़काओ।
हो करके दुखी मैं आई करके किनारा
विश्वास था पूरा दोगे आप सहारा॥
पर आशा के विपरीत यहाँ हो जाये॥ २७॥

अब कहाँ जाऊं मैं दिखती राह नहीं है
इस भू पर मेरा आश्रय नहीं कहीं है।
वह लगी जोर से झरझर वहाँ पर रोने
बरस पडे उसके तो नयन सलौने॥
हा ! कौन जन्म के पाप उदय में आये॥ २८॥

यह नाटक तेरा असर करे नहीं मुझ पे
उमड़ रहा है रोष हृदय में तुझ पे।
काश ! जन्म लेते ही तू मर जाती
तो घड़ियाँ ऐसी आज नहीं ये आती॥
क्या दुख उस घर में समझ न मुझको आये॥ २९॥

शर्म न आई उनकी निन्दा करते
क्या दुख देंगे वे दुख दुनिया का हरते।
मन काला तेरा काले सब हैं दिखते
हों विचार जैसे लेखक वही तो लिखते॥
चश्मा है जैसा रंग नजर वही आये॥ ३०॥

हो विनय व्यक्ति में सबका मन हर लेता
यह अविनय ही तेरा दुख तुझको है देता।
स्पष्ट कहता हूँ लौट यहाँ से जाओ
मत मुझसे ऐसी मिथ्या आश लगाओ॥
फटकार तात की सुन सीधी हो जाये॥ ३१॥

हाथ जोड़ गिर चरणों में वह बोली
बोली क्या मन की ग्रंथियाँ उसने खोली।
तात आपका कथन सत्य है, हितकर
मैं ही मेरे लिए बनी हूँ दुखकर॥
सुन बात आपकी नयन मेरे खुल जाये॥ ३२॥

अनुचित सोचा, अनुचित ही मैंने किया है
क्या हो इसका परिणाम न ध्यान दिया है।
गिरती हुई को आपने तात! संभाला
थी अंधकार में मिला मुझे उजियाला॥
अब विनती एक है उस पर ध्यान दिलाये॥ ३३॥

बिना आज्ञा के आई सत्य बताऊं
अब जाऊं तो किस मुँह से वहाँ मैं जाऊं।
इतनी सी दया तो तात! आप दिखलाओ
भैया को मेरे साथ वहाँ भिजवाओ॥
समझा कर भैया बिगड़ी बात बनाये॥ ३४॥

की मैंने तो भूल तात ! लूं मानी
जो सच पूछो तो की मैंने नादानी।
अब आगे से नहीं ऐसी गलती होगी
ना समझी से ही मैंने पीड़ा भोगी॥
अश्रु टपक मानो मन मैल बहाये॥ ३५॥

अहसास भूल का अगर व्यक्ति कर लेता
तो समझो भंवर में फंसी नाव वह खेता।
कितना भी रोष हो फिर वह नहीं रह पाता
ऐसा नर सबका दया पात्र बन जाता॥
है विनय में शक्ति आप इसे अजमाये॥ ३६॥

देखा सुदत्त ने भूल सुता ने स्वीकारी
मन उमड़ी दया, बेटी को लिया पुचकारी।
नाम कैसा इस घर का बेटी ! सोचो
क्या कहती दुनिया, तुम खुद ही आलोचो॥
झुक रहने वाला सुख जीवन में पाये॥ ३७॥

बड़े प्रेम से खाना उसे खिलाया
माता ने भी निज पुत्री को समझाया।
बुला पुत्र को सारी बात बताई
यह साथ तेरे जायेगा तेरा भाई॥
यों कह भ्राता संग रथ में उसे बिठाये॥ ३८॥

विजया भ्राता संग श्वसुर गेह को आई
आई पर मन ही मन वह अति शरमाई।
मणीचन्द्र ने उसको पास बुलाया
बेटी ! क्यों क्रोध में ऐसा कदम उठाया॥
टप टप अश्रु विजया तो टपकाये॥ ३९॥

भाई ने झुक कर कहा आप हो ज्ञानी
हुई नासमझी से बहुत बड़ी नादानी।
मैं पड़ूं आपके पाँव क्षमा कर दीजै
कुलवधू आपकी चरण-शरण में लीजै॥
क्रोधावेश में ध्यान नहीं रह पाये॥ ४०॥

सास पास जाकर भी विजया रोई
मिथ्या अहं में बुद्धि मेरी खोई।
पीहर के भरोसे अहंकार मन जागा
पर मान के दोषी उनने मुझको त्यागा॥
मुझ मूर्खा को पुनः आप अपनाये॥ ४१॥

सुभद्रा ने विजया को गले लगाया
है खुशी मुझे मानस तेरा पलटाया।
क्रोधी व्यक्ति खुद जलता और जलाता
अपनी इज्जत को धूल वह मिलाता॥
है सुखी वह जो इस पथ पर नहीं जाये॥ ४२॥

जहाँ प्रेम से रहते परिजन सारे
उस घर में है सुख की शीतल बौछारें।
हो विपुल वैभव पर प्रेम नहीं हो उर में
सब पाकर भी नहीं चैन रहे उस घर में॥
अतः भूल कर रोष हृदय नहीं लाये॥ ४३॥

शिरोधार्य हैं शिक्षा मात ! तुम्हारी
अहंकार से ही यह बढ़ी बीमारी।
अब कभी क्रोध को निकट न आने दूंगी
इस दुष्ट अहं को निज से दूर रखूंगी॥
अपराध मेरा सब आप माफ करवाये॥ ४४॥

फिर पति चरणों में उसने शीश नमाया
निष्कारण मैंने आपका कष्ट बढाया।
यह क्षमा आपसे मांग रही अपराधिन
सब दोष मेरा है नहीं आपका स्वामिन्॥
कर कृपा आप इस दासी को अपनाये॥ ४५॥

कब मैंने तुमको ठुकराया बतलाओ
तुम निज आदत से बाज नहीं है आओ।
तुम ही तुम्हारे दुख का सच कारण हो
नहीं रहे समस्या अगर क्षमा धारण हो॥
यों विजया को गुणचन्द्र वहाँ समझाये॥ ४६॥

विजया का भ्रात भगिनी प्रति प्रेम जताये
अब रखना ध्यान यह फिर न शिकायत आये।
मैं जाता हूँ शान्ति से हिलमिल रहना
ना हो सेवा में चूक, यही है कहना॥
भाग्यवान ही सेवा अवसर पाये॥ ४७॥

विजया बोली निश्चिंत आप हो जाओ
हे भ्रात ! मेरी अब नहीं शिकायत पाओ।
तात-मात को नमन मेरा तुम कहना
सुध तुम भी आकर मेरी लेते रहना॥
कहना तात को चिन्ता कुछ नहीं लाये॥ ४८॥

अब विजया भ्रात वह श्रेष्ठी पास है आया
आकर के उसने अपना शीश नवाया।
हो आज्ञा मुझको जाना अब मैं चाहूँ
फिर शीघ्र आने का यहाँ मैं भाव बनाऊं॥
रोके न रुके तो रथ श्रेष्ठी मंगवाये॥ ४९॥

ले विदा बहन के घर से हुआ रवाना
उड़ चला बैठकर रथ में वह परवाना।
घर आकर उसने सारा हाल सुनाया
सुन मात-तात का हृदय बहुत हरसाया॥
सुसंतति पाकर कौन नहीं हरसाये॥ ५०॥

अब विजया सास की छाया बन कर चलती
कर सेवा सबकी खुशी उसे तो मिलती।
पुत्रवती बन जग में सुख तुम पाओ
शुभ कर्मों से जीवन अपना महकाओ॥
यों आशीर्वाद सदा वह सास से पाये॥ ५१॥

सानन्द समय अब निकल रहा है सुख से
विग्रह के शब्द न निकले किसी के मुख से।
नित पति-पत्नी सेवा में रस हैं लेते
नहीं अभ्यागत को खाली जाने देते॥
अब धर्म क्रिया में रस विजया को आये॥ ५२॥

घर के काम में जरा प्रमाद न करती
दुखी द्वार पर आए दुख वह हरती।
सेवा कार्य में रहे नहीं वह पीछे
धर्म-वृक्ष को दान नीर से सींचे॥
वह ज्ञान, भक्ति, सेवा कर समय बिताये॥ ५३॥

दान, शील, तप भाव मुक्ति पथ साधे
रस लेकर चारों जिनवर धर्म आराधे।
आत्म-पतन हो ऐसी प्रवृत्ति न करते
भवभ्रमण हो जिनसे उन कार्यों से डरते॥
सदाचरण से पाप धोते वे जाये॥ ५४॥

उपवास, आयम्बिल कभी एकासन करते
तप, तेज के आगे कर्म नहीं है ठहरते।
निन्दा विकथा से दूर सदा वे रहते
जब समय मिले वे धर्म कथा हैं कहते॥
स्वाध्याय, ध्यान में आनन्द उनको आये॥ ५५॥

नाम से नहीं वे कर्म से जैन हैं सच्चे
निर्मल मन से वे जैसे होते बच्चे।
व्रत नियमों में नहीं रहे वे कच्चे
दृढ़ श्रद्धालु बन भाव रखे नित अच्छे॥
सुपात्रदान की सदा भावना भाये॥ ५६॥

कई लोगों को जिनधर्मी उन्होंने बनाया
क्यों न बनाये धर्म हृदय में समाया।
जिस रंग में मन रंग जाता वही सुहाता
रस आये जिसमें मन उससे जुड़ जाता॥
फिर तो हटे नहीं चाहे जितना हटाये॥ ५७॥

धर्म निष्ठा अद्भुत श्रेष्ठी के मन में
वह सोचे जिनकी आस्था होवे जिन में।
उन्हें ही अपने घर पेढी पे रखूंगा
हो शिथिल आस्था तो उनमें भाव भरूंगा॥
अहो बंधुओ ! आप भी श्रद्धा जगाये॥ ५८॥





एकादशम – पटल

प्रत्यावर्तन

दोहे

पता न कब क्या स्थिति बने, आय समय का मोड़।
बसे कई परदेश जा, जन्म भूमि को छोड़॥

मौसम रहे न एकसा, पंछी त्यागे नीड़।
समय भरे हर घाव को, मिटती मन की पीड़॥

कहीं रहे पर जन्म भू, मन ना पाये भूल।
उठे हूक इसकी सदा, कब देखूं वह धूल॥

मातृभूमि की धूल का, महत्त्व कितना भ्रात!
राम गये वनवास तो, लीनी मिट्टी साथ॥

मातृभूमि के नाम पर, दिये कई ने प्राण।
बढ़कर है यह स्वर्ग से, मिले न इस बिन त्राण॥

आज हाल क्या हो रहा, कैसे – कैसे काम।
मातृभूमि को कर रहे, बेटे ही बदनाम॥

खेलकूद जिस पर बढ़े, पीया जिसका नीर।
उसी धरित्री मात को, पुत्र दे रहे पीर॥

स्वार्थ के वश जो भी नर, जाये माँ को भूल।
नमक हरामी मानिये, जीवन उसका धूल॥

मणीचन्द्र सुख में बहुत, चहुँ ओर आह्लाद।
'कमल प्रभा' लेकिन करे, जन्मभूमि को याद॥

पूर्ववत्

याद एक दिन कनकपुरी की आई
जन्म भूमि क्या जाये कभी विसराई।
जिस मिट्टी में हम पले पुषे अरु खेले
भला रहे कहीं उसको कैसे भूले॥
तब ही स्वर्ग से बढ़कर वह कहाये॥ १॥

पत्नी, पुत्र के पास श्रेष्ठी आ बोला
जो लाया भाव वह अपने हृदय का खोला।
वर्ष हो गए द्वादश निकले घर से
मातृभूमि दर्शन को मम - मन तरसे॥
सुन बोले सभी हमको भी याद सताये॥ २॥

बात बात में निश्चिंत हो गया जाना
मन करे सभी का आज ही होवे रवाना।
श्रेष्ठी ने मुनीम को अपने पास बुलाया
आदेश पाते ही त्वरित वह चल आया॥
मणीचन्द्र जी प्रेम से पास बिठाये॥ ३॥

नमस्कार कर बैठ मुनीम वह बोले
क्या आज्ञा स्वामिन् ! बात हृदय की खोले।
श्रेष्ठी ने मुनीम को सारी बात बताई
कनकपुरी की याद हमें है आई॥
जाने का नाम सुन मन उसका मुरझाये॥ ४॥

सुन सेवक भी हत प्रभ मन में रह जाये
वे बोले स्वामी क्यों ये भाव मन आये।
क्या कारण हमको छोड़ यहाँ से जाओ
चरणों में रहने दो मत यों छिटकाओ॥
सब सेवक अपने भाव उन्हें दरसाये॥ ५॥

श्रेष्ठी ने कहा यह स्नेह आपका भाई
पर मातृभूमि की याद हमें है आई।
जन्म भूमि को भूल भला कोई सकता
नाम आते ही अन्तर-कमल विकसता॥
अतः जाने को मन मेरा मचलाये॥ ६॥

सब कारोबार मुनीमों को संभलाया
रथ शीघ्र करो तैयार उन्हें बतलाया।
धन पुरस्कार में सबको बहुत दिया है
गले लगा सबका सम्मान किया है॥
जाने की तैयारी श्रेष्ठी सब करवाये॥ ७॥

रथ शीघ्र आ गये वहाँ पर सजे सजाये
सब आवश्यक सामान त्वरित चढ़वाये।
करते काम सेवक अश्रु ढुलकाये
कई लोग वहाँ पर एकत्रित हो जाये॥
क्यों न होंगे जो सबको सुख पहुँचाये॥ ८॥

नगर बहि कई जन पहुँचाने आये
जा रहे श्रेष्ठीवर मन सबके मुरझाये।
कर जोड़ श्रेष्ठी कहे लौट आप अब जाए
मत कष्ट मेरे हित इतना आप उठाए॥
स्नेह आपका भुला नहीं हम पाये॥ ९॥

सब बोले श्रेष्ठी से भूल हमें नहीं जाना
शीघ्र लौटकर पुनः इधर को आना।
श्रेष्ठी बोला - भूल कैसे पाऊंगा
योग बना तो निश्चित ही आऊंगा॥
विदा ले सबसे रथ को आगे बढ़ाये॥ १०॥

रुकते-रुकते कनकपुरी वे आए
देख अचानक नगर के जन हरसाए।
रथ से उतर कर पैदल वे तो चलते
दिव्य भाव जो भव्य वदन पे झुलकते॥
जन समूह श्रेष्ठी के साथ वहाँ हो जाये॥ ११॥

निज भवन के बाहर आकर रथ को रोका
स्वागत है तुम्हारा बोला मानो झरोखा।
हे धर्मात्मन्! दो फिर से मुझको मौका
श्रेष्ठी वदन पर धर्म का तेंज अनोखा॥
मुँह मांगा धन दे वे निज भवन छुड़ाये॥ १२॥

करवाके मरम्मत उसको भव्य बनाया
फिर नये रूप में भवन पुनः सजवाया।
बिना बुलाये आये सेवक सारे
है अहो भाग्य जो पुनः आप पधारे॥
मिलने वालों का तांता वहाँ लग जाये॥ १३॥

भवन भांति दुकान पुनः छुड़वाई
पहले की तरह सब व्यवस्था करवाई।
गुणचन्द्र पिता की आज्ञा एक न टाले
व्यापार पिता का पूरा वही संभाले॥
नगरपति भी मिलने श्रेष्ठी से आवे॥ १४

ठाट बाट है पहले से भी बढ़कर
क्यों नहीं होगा जिनका मन है नित शुभकर।
खुशियों का नर्तन, अमन चैन है घर में
घुली मिश्री अब तो विजया स्वर में॥
सहस किरण पुण्यों का प्रभा फैलावे॥ १५

सांसारिकता से छोड़ दिया है नाता
धर्म ध्यान में श्रेष्ठी समय बिताता।
सोचे श्रेष्ठी मैं कब तक फंसा रहूंगा
मोह में उलझा मर-मर कब तक जीऊंगा॥
जब तजना ही फिर क्यों उलझन बढ़ावे॥ १६

प्रबल हुई अब साधना प्रति अनुरक्ति
इस जग के सुखों से हुई है मन में विरक्ति।
सच पूछो देखी है जग सुख की आसक्ति
अब निश दिनी है प्रभु नाम की भक्ति॥
भक्ति की शक्ति अनुपम है कहलावे॥ १७

[illegible] श्रेष्ठी निज मन में यह विचारे
मन चंचल सांसारिक सुख [illegible]।
[illegible]
[illegible]॥
[illegible]॥ १८

अन्तर की सृष्टि में ज्यों ज्यों उतरा गहरा
ज्ञानावरण का हल्का हुआ है पहरा।
जाति स्मरण तो ज्ञान हुआ है उस पल
अरे ! रह गये इस जीवन के कुछ पल॥
उसी समय मणीचन्द्र सजग हो जाये॥ १९॥

पत्नी-पुत्र को अपने पास बुलाया
करके उनको संकेत निकट बिठलाया।
फिर कहा श्रेष्ठी ने समय जाने का आया
जाति ज्ञान ने आज ऐसा दरसाया॥
अतः करूं मैं अनशन ध्यान यह लाये॥ २०॥

क्षमा याचना मैं तुम सबसे करता
समत्व भाव के नीर से घट निज भरता।
अन्तर दिल से यह सम्बन्ध सारा छोड़ूं
विभावदशा से मुँह अपना मैं मोड़ूं॥
संथारे की सुन सन्न सभी रह जाये॥ २१॥

कुछ भी सोचें, जाने वाला तो जाता
यह मृत्यु निमंत्रण कभी नहीं टल पाता।
धन, जन का बल हो कितना ही बलशाली
पर आई मृत्यु ना कभी लौटती खाली॥
खुशी - खुशी वह श्रेष्ठी अनशन ठाये॥ २२॥

महामंत्र का जाप लगा है चलने
कमल सरिस मुख लगा श्रेष्ठी का खिलने।
'सिद्धे सरणं' कह जीव तत्त्व है निकला
उड़ गया हंस यह देख दृश्य मन पिघला॥
टप - टप परिजन सब ही अश्रु टपकाये॥ २३॥

मुस्काया शोक, घर पूरा ही मुरझाया
मुरझाए भले क्या काल रहम कभी लाया।
क्रिया कर्म विधिपूर्वक सब ही कीना
दिल खोल दान मणीसुत ने वहाँ है दीना॥
संसारी जीव व्यवहार जगत का निभायें॥ [illegible]॥

प्रथम स्वर्ग सौधर्म नाम है प्यारा
है दिव्य छटा अद्भुत उसका तो नज़ारा।
तज देह श्रेष्ठी ने जन्म वहाँ पर पाया
देव, देवियों ने भी हर्ष मनाया॥
स्वर्गीय सुखों में समय बीतता जायें॥ [illegible]॥

जब सुर जीवन का आयुष होगा पूरा
ले जन्म विदेह में करे कर्म का चूरा।
करके साधना उत्तम, मुक्ति पाए
अजर - अमर अविनाशी वह हो जाए॥
अब आओ सुभद्रा की भी बात बनायें॥ [illegible]॥

एकाग्रचित्त हो ध्यान से बात यह सुनिए,
सुनकर ही रहें नहीं, चिन्तन भी कुछ करिए।
सेठानी यद्यपि धर्म क्रियाएं करती
सामायिक, पौषध, प्रभु ध्यान भी धरती॥
पर मोह ममता से विराग न वह हो पाये॥ [illegible]॥

इस सांसारिक का फल देखो तुम भाई
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

करो भले तुम कुछ भी धर्म क्रियाएं
आसक्ति हटे बिन फल पूरा नहीं पाए।
यह ममता हमको भव भव में भटकाए
हटे बिना सिद्धत्व नहीं प्रगटाए॥
सर्वज्ञ प्रभु यह सत्य हमें दरसाये॥ २९॥

गुणचन्द्र पिता से भला रहे क्यों पीछे
शुभ भावों से वह धर्म वल्लरी सींचे।
चहुँ ओर नगर में महिमा उसकी छाई
नगर श्रेष्ठी पदवी उसने भी पाई॥
वह तात सदृश ही यश कीर्ति फैलाये॥ ३०॥

संतति सुख गुणचन्द्र ने पूरा पाया
जीवन का सच्चा राज उसे समझाया।
गृही धर्म के सब कर्त्तव्य निभाये
अब धर्म भावना का परचम लहराये॥
शुद्धि आत्म की लक्ष्य प्रमुख हो जाये॥ ३१॥

इस जीवन में भी नींद उड़ा नहीं पाए
अन्तर का आंगन अगर नहीं महकाए।
तो फिर नर जीवन पाकर क्या है कीना
दानव या पशुवत् जीना भी कोई जीना॥
यों चिन्तन अन्तर में चलता ही जाये॥ ३२॥

एक दिवस वह बैठा ध्यान लगाये
तभी दास आ अपना शीश झुकाये।
ध्यान पूर्ण होने पर खोली आँखें
कुछ क्षण सेवक की ओर रहा वह ताके॥
फिर कहे भाई ! क्या समाचार नव लाये॥ ३३॥

स्वामिन्! केशी श्रमण बाग में आए
नर नारी दौड़ दर्शन करने को जाए।
शुभ समाचार तुमने तो आज सुनाए
गुरु दर्शन का उत्साह हृदय उमड़ाए॥
ले परिवार को साथ बाग में जाये॥ ३४॥

उपदेश गुरु का हर्षित हो सब सुनते
ज्ञान मुक्ता मुख से बिखरे सो चुनते।
सुन रहे सभी वे, निज को अब पहचानो
नरभव कितना है मूल्यवान यह जानो॥
मत खोओ अवसर बार - बार नहीं आये॥ ३५॥

मन जब तक अपना पावन नहीं बन पाता
अर्हन्त सिद्ध से जुड़े कभी नहीं नाता।
पुद्गल में मत राचो यह नश्वर सारे
इनका त्याग आत्मा का मैल उतारे॥
पुद्गल प्रति राग यह मन को मलिन बनाये॥ ३६॥

सुन गुरू देशना मणीसुत तो हरसाया
सिर चरणों में रख मन का भाव बताया।
अहो पूज्यवर ! अच्छा मुझे जगाया
भाव संयम का मेरे तो मन छाया॥
वे 'जहा सुहं देवाणुप्पिए' फरमाये॥ ३७॥

यह सुन गुरु मुख से वंदन उसने किया है
संयम लेना है निश्चय धार लिया है।
इत विजया भी अन्तर अपना निहारे
कृत भूलों पर वह अपने को धिक्कारे॥
वह अपने आप पर सोच बहुत पछताये॥ ३८॥

हा ! मैंने कैसे कैसे कर्म किए थे
सास - श्वसुर को कितने कष्ट दिए थे।
सुपथ से अपने प्रियतम को भटकाया
हाथों हाथ इस जीवन में फल पाया॥
संयम स्वीकारूं पाप मेरे धुल जाये॥ ३९॥

संयम क्या है ? रत्नत्रय का आराधन
जो कर्म नाश का उत्तम, पावन साधन।
महाव्रत धारण व समिति गुप्ति का पालन
इन से ही होता कर्मों का प्रक्षालन॥
क्या वेश बदलना ही संयम कहलाये॥ ४०॥

हाँ तो वंदन कर मणीसुत जी घर आए
पुत्र-पत्नी को मन के भाव बताए।
विजया कहे स्वामी ! उत्तम भाव जगाया
मेरे भी मन में यही भाव है आया॥
गुरु वाणी सुन जग सुख निस्सार दिखाये॥ ४१॥

सुन पुत्र कहे अहो तात ! अभी मत जाओ
हे मात ! आप भी वचन न ऐसे सुनाओ।
क्यों कह कर यों मन मेरा व्यथित बनाओ
कौन आप बिन मेरा है बतलाओ॥
कहते - कहते नयन सजल हो जाये॥ ४२॥

प्रियसुत आँखें तुम सजल नहीं बनाओ
यह जीवन है किस हेतु चिन्तन लाओ।
नरजीवन का नहीं लक्ष्य भोग रत रहना
है प्रमुख ध्येय कर्मेन्धन को यहाँ दहना॥
यह कार्य पूर्ण इस भव में ही हो पाये॥ ४३॥

यह मोह मुक्ति में बहुत बड़ी है बाधा
जिसने भी त्यागा, कार्य उसी ने साधा।
स्वाध्याय पूरा नहीं तुमने अभी किया है
इसलिये मोह ने विह्वल बना दिया है॥
नरजीवन का तुम लक्ष्य समझ नहीं पाये॥ ४४॥

यह भरा पूरा परिवार स्वप्न है लल्ला!
यह मृत्यु मारने को आतुर है टल्ला।
पल जीवन-मृत्यु बीच बचे जो प्यारे
हैं इच्छा संयम लेकर उन्हें संवारे॥
नरतन पाने का पूरा लाभ उठाये॥ ४५॥

खुशी - खुशी दो स्वीकृति बेटे ! हमको
होना चाहिए मन में गर्व तो तुमको।
इतने में आ सेवक ने शीश नमाया
समाचार जो लाया आके सुनाया॥
सुव्रता सती जी अपने बाग में आये॥ ४६॥

हर्षित हो विजया खड़ी वहाँ हो जाये
स्वर्णहार सेवक को वह पहनाये।
संयम की जो प्रिय ! मैंने राह चुनी है
उस हेतु लगता प्रभु ने विनती सुनी है॥
सकल मनोरथ पूर्ण आज हो जाये॥ ४७॥

मन संयम हेतु मेरा उछल रहा है
आह ! कितना शुभ संदेशा इसने कहा है।
सुत सुनकर बातें बोल नहीं कुछ पाये
श्रेष्ठी ने परिजन अपने तुरत बुलाये॥
पाते ही सूचना दौड़े सब वे आये॥ ४८॥

गुणचन्द्र श्रेष्ठी ने सादर उन्हें बिठाया
फिर अपने मन का भाव उन्हें बतलाया।
सुन चौकन्ने सब हुए यह क्या धारा ?
रसभरा यह संसार लगा क्यों खारा ?
संसारी जीव तो यही भाव दरसाये॥ ४९॥

सुन गुरु वाणी मम हटा अज्ञान अंधेरा
जग माया से मन उचट गया अब मेरा।
नश्वर तन का क्या छूट जाये यह कब है
इक दिन तो तजकर जाना हमको सब है॥
समय के रहते जीवन सफल बनाये॥ ५०॥

यों श्रेष्ठी ने उन सबको ही समझाया
वैराग्य भाव अन्तर में है लहराया।
नहीं रुकेंगे ये अब सोच लिया है सबने
तो मुहूर्त्त दीक्षा का निकलाया फिर उनने॥
सब दीक्षा की तैयारी में जुट जाये॥ ५१॥

गुणचन्द्र विजया संग निकला अपने घर से
अन्तर तो उसका आज बहुत ही हरसे।
जनसमूह भारी संग बाग में वे सब आये
आ गुरु चरणों में सबने शीश झुकाये॥
गुरु ! तारो हमको मणीसुत जी दरसाये॥ ५२॥

किया लोच फिर साधु वेश है धारा
'जय महावीर' का गूँज उठा जयकारा।
गुरुदेव ने उनको प्रत्याख्यान कराया
ले संयम अन्तर-कमल बहुत मुस्काया॥
गुणचन्द्र श्रमण, विजया श्रमणी हो जाये॥ ५३॥

परिजन अब निज को रोक नहीं है पाये
वहाँ सतवेश को देख नयन भर आये।
सुत, पुत्रवधु तो टप टप अश्रु बहाये
यह मोह दशा है विस्मय मन नहीं लाये॥
देकर के दीक्षा सभी लौट है जाये॥ ५४

अब शुद्ध भाव से संयम दोनों पाले
प्रमत्त भाव में नहीं स्वयं को डाले।
गुरु-गुरुणी साथ वे दोनों विचरण करते
हों कर्म नष्ट बस एक ध्यान वे धरते॥
निज चिन्तन में वे नित समय बिताये॥ ५५॥

गुणचन्द्र मुनि स्वाध्याय में रस है लेते
संयम-पालन संग ध्यान सेवा में देते।
अध्ययन रुचि ने अपना रंग दिखाया
चवदह पूर्वों का ज्ञान उन्होंने पाया॥
अन्तर की रमणता कर्म का मैल छुड़ाये॥ ५६॥

अन्तर-शोधन की क्रिया है संयम धारण
हो संयम संग तप बने मुक्ति का कारण।
यदि यह न बने तो फिर क्या संयम लेना
घर छोड भांड होना है, ध्यान तुम देना॥
दीक्षा है इसी हित कर्मों से पिण्ड छुड़ाये॥ ५७॥

उत्कृष्ट भावों से तप वे मुनिवर करते
अन्तर सृष्टि में गहरे गहरे उतरते।
मुनि ने झौंक दी तप में अपनी काया
फल देखो उसका अवधिज्ञान है पाया॥
बढ़ने वाला ही मंजिल दूरी घटाये॥ ५८॥

अब दूर नहीं हैं मुक्ति महल दरवाजा
बजता है जहाँ अखण्ड शांति का बाजा।
इस जग के दुखों की छाया नहीं वहाँ है
वह मिले सभी को ऐसा सौभाग्य कहाँ है ?
विरला ही जीव इस मुक्ति राज्य को पाये॥ ५९॥

गुणचन्द्र मुनि ने निज को इतना तपाया
धुला कर्म-मैल, अन्तर उनका निखराया।
मोह नष्ट हो गया है उनका पूरा
घाति कर्मों का कर दिया उनने चूरा॥
पा ज्ञान केवल सर्वज्ञ वे तो बन जाये॥ ६०॥

आयुष्य पूर्णकर सिद्धि उन्होंने पाई
अन्तर निर्मलता उन की अब मुस्काई।
जन्म - मरण का कष्ट मिटा है सारा
उस पूर्ण ज्ञान का फैल गया उजियारा॥
अब महासती विजया की ओर हम जाये॥ ६१॥

वह महासती भी रहती कैसे पीछे
संयम-तप से कर्मों का कीच उलीचे।
ज्ञान - ध्यान में रस पूरा वे लेती
ध्यान साधना की करती बस खेती॥
एकादश ही अंगों का ज्ञान वह पाये॥ ६२॥

अविनय, क्रोध का फल कटु कैसा होता
अहं भाव भी दुख-बीजों को बोता।
यह सब उसने जीवन में देख लिया था
देखा क्या कड़वा फल भी भोग लिया था॥
अतः विनय, समभाव, सेवा अपनाये॥ ६३॥

तप की आग में कर्म लगे जब दहने
दया करो वे कर्म लगे यों कहने।
पाप घटे तो पुण्य स्वयं बढ़ जाता
बढने वाला ही मंजिल अपनी पाता॥
पा मरण समाधि स्वर्ग वह तो जाये॥ ६४॥

पुण्य योग था स्वर्ग बारहवाँ पाये
समय पूर्ण कर महाविदेह फिर आये।
वहाँ चक्रवर्ती का वैभव पाये अपारा
फिर संयम ले वह भव से करे किनारा॥
बस कथा यहीं विराम है अपनी पाये॥ ६५॥

सुनके कथा यह चिंतन गुणिजन ! लाओ
विनय, सेवा से निज को अमर बनाओ।
पश्चाताप से कर्म मैल है धुलता
क्षमाभाव से आती मन निर्मलता॥
क्षमाशील, विनयी बन शिव सुख पाये॥ ६६॥

प्राचीन कथा यह भायी मेरे मन को
शब्द दे दिये अन्तर के चिन्तन को।
ग्राम भिनाय में इस पर कलम चलाई
विक्रम संवत् दो सहस सत्तावन मांही॥
सरस कथा सुन आनन्द सबको आये॥ ६७॥

भिनाय ग्राम में लेखन शुरू किया था
विजयनगर में आ विराम दिया था।
शुभ वर्षावास अट्ठावन का रंग लाया
धर्मसभा में वृत्त यह नित्य सुनाया॥
सब उत्कंठा से सुनते कान लगाये॥ ६८॥

सन् दो सहस दो, मार्च ग्यारह सुखकारी
फाल्गुन कृष्णा की तेरस है शुभकारी।
दिन चन्द्रवार नभ में चढ़ दिनकर आया
कर काव्य पूर्ण मन ' कमल प्रभा ' हरसाया॥
ले शिक्षा इससे जीवन उच्च बनाये॥ ६९॥



मणीचन्द्र गुणचन्द्र की, कथा बड़ी रसवंत।
'कमल प्रभा' गुण ग्रहण से हो जीवन 'जयवंत'॥

धूप - छाँव की जिंदगी, सुख दुख का संसार।
इन सबसे बचना यदि, खोलो मुक्ति द्वार॥

✤ ✤ ✤

